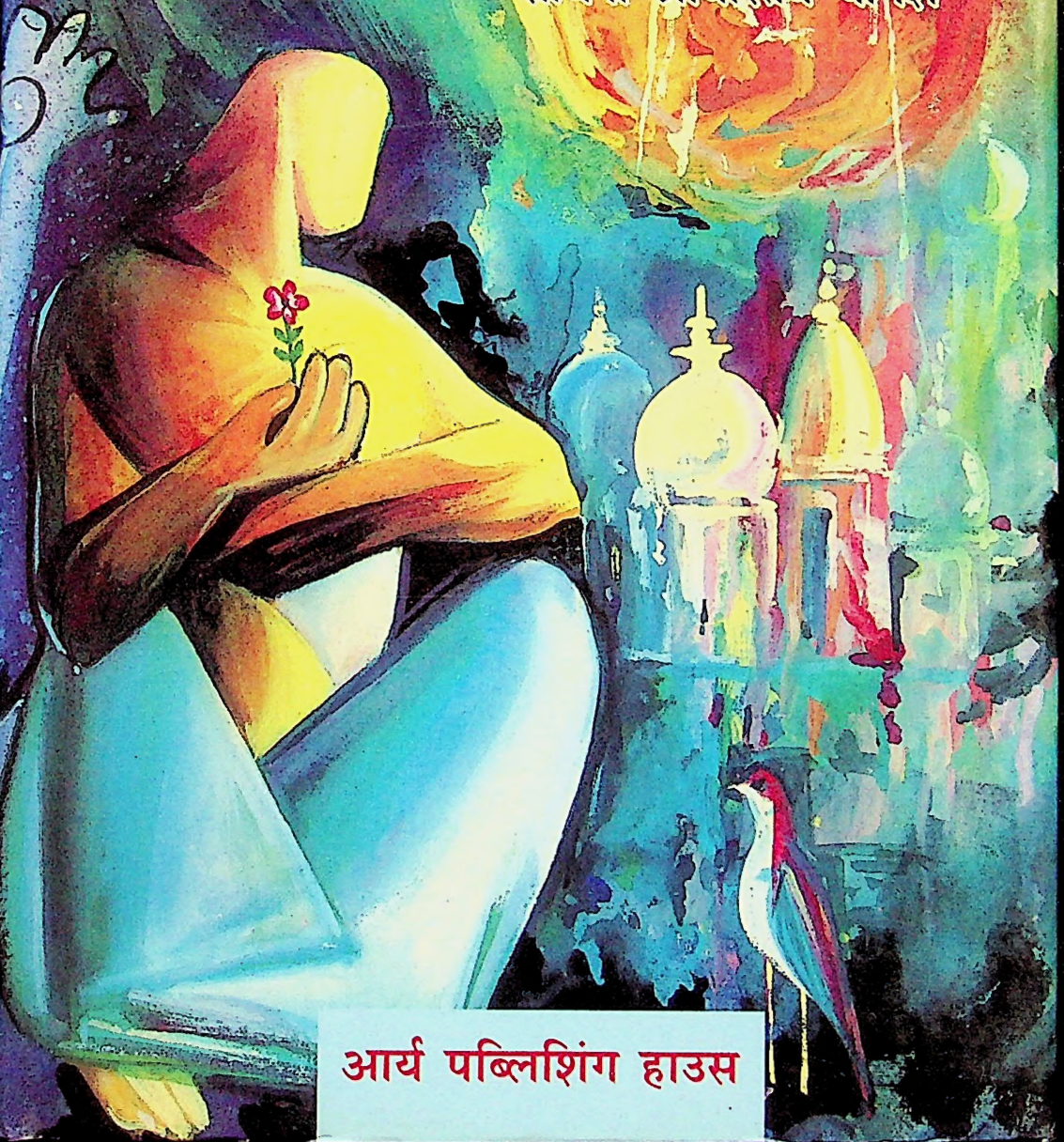


2671

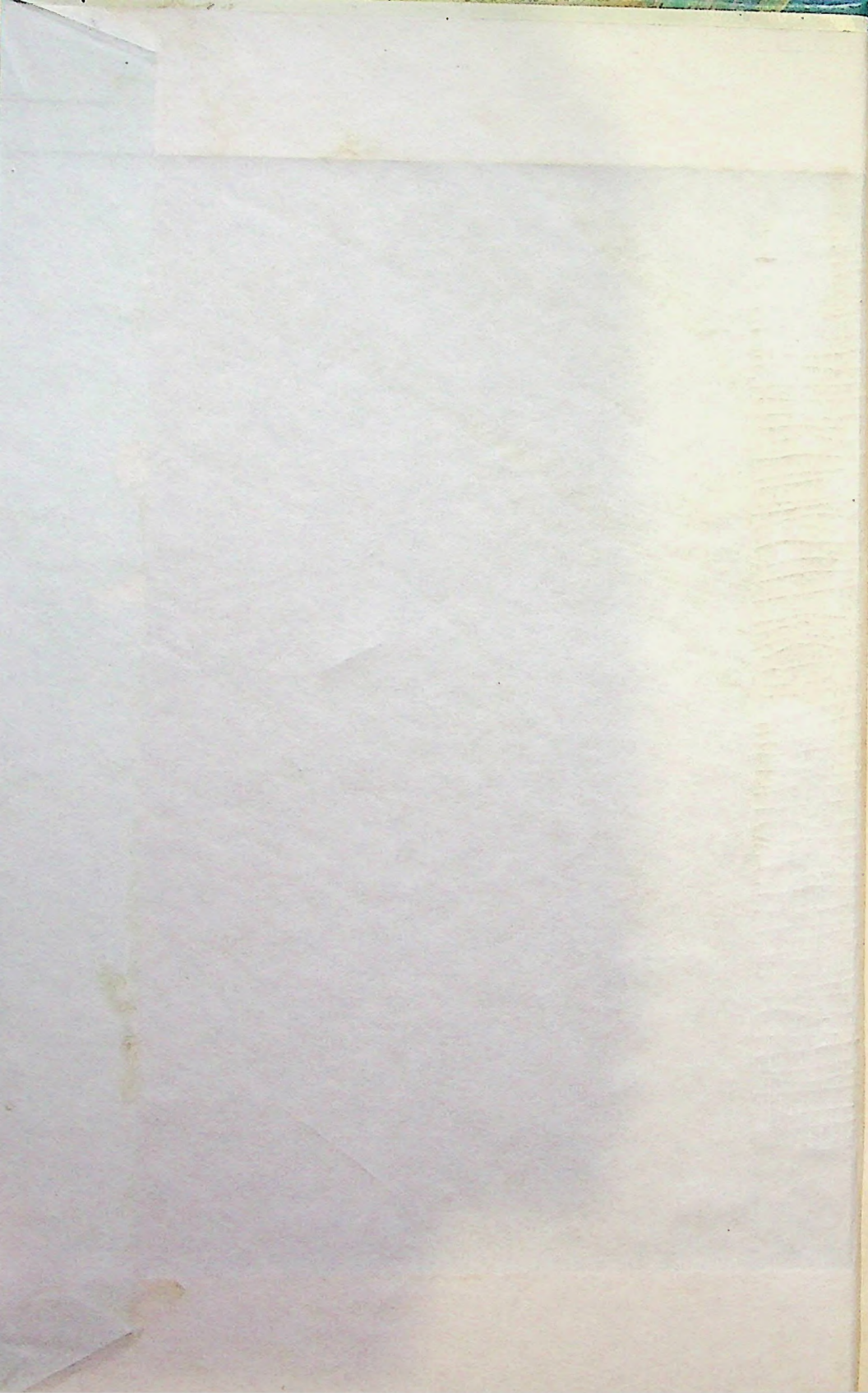
2671

प्रायश्चित्त

साधना श्रीवास्तव-योगेश



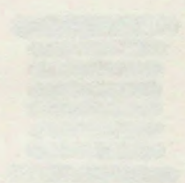
आर्य पब्लिशिंग हाउस



प्रायश्चित्त

(भगवद् एवं शिव कृतान्तर्गत का प्रकाश)

संस्कृत-प्रकाशक-संस्थान



2671

आर्य प्रकाशनिग्न हाउस

1/1, बंगला रोड, कोलकाता-700015

1520

प्रायश्चित

[सशक्त एवं प्रेरक कहानियों का संग्रह]

साधना श्रीवास्तव-योगेश



आर्य पब्लिशिंग हाउस

1569/30 नाईवाला, करोल बाग, नई दिल्ली-110005

प्रकाशक :

आर्य पब्लिशिंग हाउस

1569/30 नाईवाला, करोल बाग

नई दिल्ली-110005 (भारत)

दूरभाष : 011-28752745, 28752604

फैक्स : 011-28756921

ISBN - 81 - 7064 - 074 - 1

© साधना श्रीवास्तव

प्रथम संस्करण : 2007

मूल्य : 120.00 रुपये

लेज़र टाइपसेटिंग :

बंसल लेज़र प्रिंटर्स

मुद्रक :

कैपिटल ऑफ़सेट

नवीन शाहदरा, दिल्ली-32

अपनी लेखनी से

कहानी-संग्रह 'प्रायश्चित' आपके हाथों में है। मैं कोई समाज सुधारिका नहीं हूँ और न किसी समाज-सुधारक संस्था से जुड़ी हूँ। हाँ समाज में व्याप्त दुर्गंधपूर्ण आचरण एवं आतंकवादी प्रवृत्तियों की तरफ मेरा ध्यान बरबस खिंच जाता है। आज शुद्ध मानवीय एवं सद्विचारों का मनुष्य में सर्वथा अभाव है। चारों ओर चोरी, डकैती और आतंक से समाज त्रस्त है। स्वार्थ, नासमझी व दूषित विचारों को अपने अंदर पनपने से रोकने में आज का मानव अक्षम है। कहानी-संग्रह 'प्रायश्चित' कुछ ऐसा ही दर्शाता है।

मेरा हमेशा यही प्रयास रहा है कि समाज से जुड़े सवाल को मैं अपनी कहानी के माध्यम से सुलझा सकूँ। अतः मुख्यतः सामाजिक मुद्दे ही मेरी कहानियों के अंश हैं। ऐसी कहानियाँ जो समाज की बुराइयों को दूर कर सकने में सक्षम हों तथा जिनसे अच्छे विचारों का जन्म हो। मैं अपनी कहानियों को ही अपनी ताकत समझती हूँ, क्योंकि मेरे लिए यही प्रमुख जरिया है जिससे मैं लोगों को अपने विचारों व आकांक्षाओं से अवगत करा सकूँ।

यदि मेरी कहानियाँ मेरे प्रयास को सफल करने में कुछ अंश तक भी कामयाब रहीं तो मैं अपना परिश्रम व उद्देश्य सार्थक समझूँगी।

जहाँ मुझे लिखने की प्रेरणा मेरे पति योगेश श्रीवास्तव से मिली है वहीं मेरी कृतियों को सँवारने में मेरी दोनों बेटियों स्मृति, स्तुति एवं पुत्र शुभम

का भी सराहनीय योगदान रहा है। मैं अपने इन प्रिय जनों का हृदय से आभार व्यक्त करती हूँ।

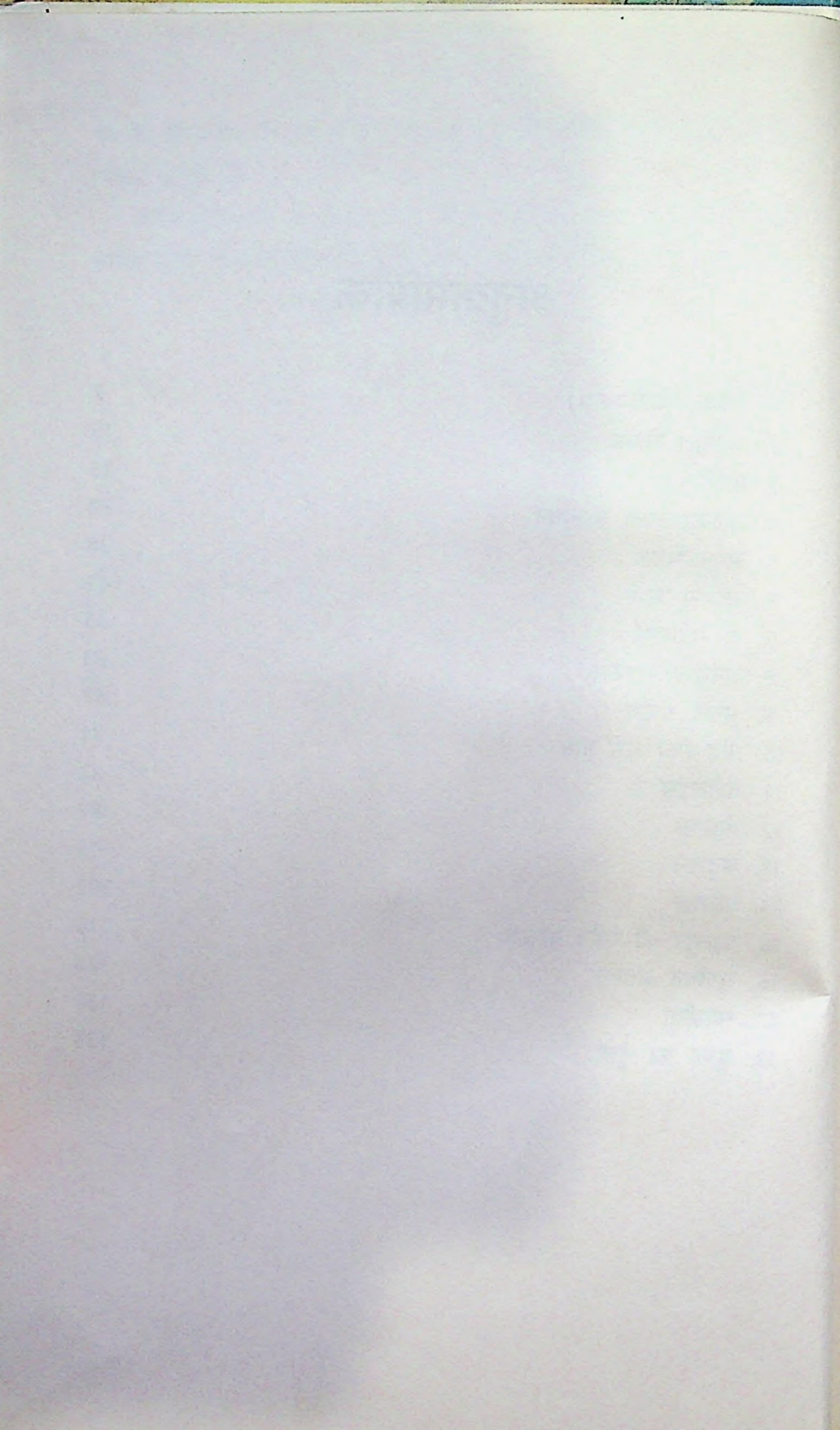
अपने प्रिय भाई श्री गिरीश चंद्र श्रीवास्तव एवं भाभी रोली से भी मुझे समय-समय पर मार्गदर्शन मिला है। इनके प्रति भी मैं हृदय से आभारी हूँ।

धन्यवाद सहित

साधना श्रीवास्तव

अनुक्रमणिका

1. सबक (कर्तव्यबोध)	7
2. अनमोल तोहफ़ा	15
3. प्रायश्चित	25
4. लौटकर आया रक्षाबंधन	33
5. अपना-पराया	38
6. आजन्म ऋणी	48
7. दो सहेलियाँ	55
8. अनमोल पुरस्कार	63
9. सुखद संयोग	67
10. नीड़ फिर बस गया	71
11. वैलेंटाइंस डे	82
12. बैटवारा	87
13. बड़प्पन	95
14. प्रतिदान	102
15. फाल्गुन की रंगीन बरसात	110
16. सुगंधित अंतर्मन	125
17. समझौता	133
18. सुबह का भूला	138



सबक (कर्तव्यबोध)

पूर्णमा और शेखर के जाने के बाद वृद्ध देवशरण कुछ देर लॉन में टहलते रहे। लॉन में चारों ओर नाना प्रकार के पुष्प अपने सौंदर्य की आभा बिखेर रहे थे। विभिन्न रंगों के फूल अत्यंत मनोहारी प्रतीत हो रहे थे। गत डेढ़-दो माह से देवशरण अपनी पत्नी शांति के साथ यहाँ हैं, लेकिन पहली बार लॉन के सौंदर्य की तरफ उनका ध्यान आकर्षित हुआ है। कहावत सत्य है कि जब अपना मन खुश रहता है तो संसार जगमगाता नज़र आता है। उनके पौत्र ने उन्हें वह सम्मान और प्यार दिया जिसके लिए वृद्ध-दंपत्ति मुद्दत से तरस रहे थे। शेखर और पूर्णिमा को अपनी गलती का एहसास हुआ। बस इतने से ही वह संतुष्ट हैं।

पश्चिम दिशा में सूर्य अपनी रोशनी समेट छिपने की तैयारी में था जिस कारण देवशरण को कुछ ठंड की अनुभूति हुई, अतः वह अपने शयन कक्ष में आकर लेट गए। वह कुछ देर सो लेना चाहते थे लेकिन नींद ने साथ नहीं दिया तो मन अपने पुत्र और पौत्र की तुलना में उलझ गया और धीरे-धीरे वह अपने अतीत में खोते गए।

गर्वमेंट इंटर कॉलेज में संस्कृत के अध्यापक देवशरण की एकमात्र पुत्री पाँच वर्षीया रंजना के बाद जब पुनः उनकी पत्नी के पाँव भारी हुए तब उन्हें सोचना पड़ा कि वह एक साधारण अध्यापक है। इस बार के बाद परिवार में वृद्धि कदापि न होनी चाहिए। जिस पर उन्होंने अमल भी किया।

एक दिन संध्या समय जब देवशरण कॉलेज से आकर पत्नी शांति के साथ चाय पी रहे थे तब सहज भाव से बोले—“बेटी तो अपनी है ही एक बेटा हो जाए तो बस हमारा परिवार पूरा हो जाए।”

“मैं भी ऐसा ही सोच रही हूँ। बेटी हो या बेटा बस दो ही पर्याप्त

हैं। देखने में यह भी आता है कि कभी-कभी लड़कियाँ लड़कों से अधिक समझदार निकल जाती हैं।” शांति ने कहा तो देवशरण ने उनके कथन को स्वीकारा और चाय पीने के पश्चात सब्जी लेने के लिए निकल गए।

समय सरकने के साथ शांति ने पुत्र को जन्म दिया। पति-पत्नी के हर्ष का पारावार न रहा। वहाँ के तत्कालीन जिलाधीश शेखर बहादुर के नाम पर पुत्र का नाम शेखर रखा कि एक दिन मेरा भी बेटा आई.ए.एस. बनेगा। रंजना के साथ शेखर की परवरिश भी लाड़-प्यार से होती रही। बड़े होते-होते शेखर को उसके माता-पिता ने ज्ञान करा दिया था कि उसे आई.ए.एस. ही बनना है। जब वह दसवीं कक्षा में अध्ययनरत था तभी एक दिन माँ ने उससे पूछा—“अच्छा बता शेखर, आई.ए.एस. बन कर हमें भी अपनी कार में घुमाएगा?”

“ज़रूर माँ,” नन्हे शेखर ने कहा

“तब तो तू राजा बेटा है पर देख अपनी बात भूलना मत।” माँ ने शेखर का कान पकड़कर स्नेह से कहा और रसोईघर की तरफ़ बढ़ गई।

समय सरकता रहा। रंजना के एम.ए. करते ही देवशरण उसकी शादी के लिए परेशान हो उठे। लेकिन उन्हें अधिक भाग-दौड़ नहीं करनी पड़ी जल्दी ही एक संभ्रांत परिवार में उसकी शादी तय हो गई। समधी प्रेमशंकर राव एडवोकेट थे तथा उनका बेटा अनुराग डॉक्टर। एक पैसे की माँग नहीं की गई। लड़की पसंद आ गई बस शादी तय। वर पक्ष की सज्जनता के कारण देवशरण ने बरातियों के स्वागत-सत्कार में दिल खोलकर खर्च किया। बेटी के तो भाग्य खुल गए। प्रेमशंकर राव ने भी समधी को धन्यवाद देते हुए कहा—“आपने बहुत अच्छा प्रबंध किया। हम आपके स्वागत-सत्कार से संतुष्ट हैं। किन शब्दों में धन्यवाद...”

“हमें शर्मिदा मत कीजिए...आपके बड़प्पन के आगे हम कुछ नहीं हैं।” समधी की बात को बीच में ही काटकर देवशरण ने कहा और फिर बेटी की विदाई के प्रबंध में व्यस्त हो गए।

संयोग से अपने प्रथम प्रयास में ही कुशाग्र बुद्धि शेखर का चयन आई.ए.एस. के लिए हो गया। हर्षित होकर देवशरण और शांति ने सोचा आखिर ईश्वर ने उनकी सुन ली। एक साधारण से अध्यापक को प्रशासनिक

सेवा के सबसे उच्च पद के अधिकारी का पिता बनने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। सोच कर देवशरण गौरवान्वित हुए।

इधर शेखर प्रशिक्षण के लिए मंसूरी गया उधर उसके रिश्ते के लिए प्रस्तावों की बाढ़-सी आ गई। लेकिन देवशरण ने सबको यह कहकर टाल दिया कि शेखर का प्रशिक्षण पूर्ण होने के बाद ही विवाह के प्रस्ताव पर विचार करेंगे और अपने संजाये अरमान पूर्ण करेंगे। पर ट्रेनिंग के बाद शेखर ने रहस्योद्घाटन किया कि उसने एक लड़की पूर्णिमा को पसंद कर लिया है और उसी से वह विवाह करेगा। यह सुनकर पति-पत्नी को आघात लगा। लेकिन शेखर से कुछ बोलना उन्होंने ठीक नहीं समझा। यथासमय विवाह कुछ सीमा तक धूम-धाम से संपन्न हो गया। नई बहू पूर्णिमा ससुराल आ गई। जो मान-सम्मान और आवभगत देवशरण ने अपनी बेटी के विवाह में उसके ससुराल वालों का किया था उसका शतांश भी उन्हें अपने बेटे के विवाह में प्राप्त नहीं हो सका। पूर्णिमा के पिता का स्तर बहुत ऊँचा था और उनका परिवार धन-दौलत के अभिमान में डूबा हुआ था। दोनों पति-पत्नी ने अपने मन को किसी प्रकार समझा लिया।

दो दिन बाद पूर्णिमा के पिता उसको ले जाने के लिए आए। शांति ने चाहा कि बहू तीन-चार दिन बाद जाए, लेकिन शेखर उसका ही पक्ष लेता हुआ बोला—“उसे जाने दीजिए माँ। यहाँ के दमघौंट वातावरण में उसका दम घुटता है।” शांति अवाक रह गई। अपने ही घर के लिए शेखर कैसी बातें कर रहा है? माना वह बड़े घर की है लेकिन बेटे की बात उसे अच्छी नहीं लगी। वह अपमान का घूँट पीकर रह गई।

यह तो आरंभ की बात थी। आगे भी पूर्णिमा ने कभी अपनी ससुराल आकर सास-श्वसुर के पास दो-चार दिन रहने की आवश्यकता न समझी। उनके प्रति उसका कुछ कर्तव्य बनता है। यह भी उसने कभी नहीं सोचा। शेखर भी ससुराल का दीवाना हो गया था। शानदार बंगला, शाही ठाठ, अपने घर-परिवार से हटकर कुछ अलग सा आडंबर। इन सबकी भूल-भूलैया में शेखर भटक गया। जिन माता-पिता ने उसे पाल-पोस कर अपने पैरों पर खड़ा किया था, उनके प्रति उसका भी कुछ कर्तव्य बनता है, यह वह बड़ी ससुराल पाकर सर्वथा भूल ही गया। यही नहीं अब शेखर को अपने घर की हर बात और तौर-तरीके पिछड़ेपन से भरे प्रतीत होते। उसने माता-

पिता के पास जाना भी नहीं के बराबर कर दिया। वृद्ध दंपति का जब तक हाथ-पाँव चला तब तक वह अकेले रहे, बाद में बेटी रंजना उन्हें अपने साथ ले गई।

समय सरकता रहा विवाह के लगभग तीन वर्ष पश्चात् पूर्णिमा को पुत्र रत्न की प्राप्ति हुई। भतीजे के जन्मोत्सव में सम्मिलित होने के लिए रंजना अनेक उपहारों के साथ भाई के ससुराल पहुँची। भाभी की माँ ने उसके लाए सामान को देखकर कुछ अलग ही अंदाज़ से कहा—“बुआ अपने भतीजे के लिए जितना सामान लाई हैं...उसी अनुपात में उसकी विदाई भी ज़रूरी है।” सुनकर रंजना ने सोचा—धन-दौलत के अभिमान की कितनी बू है इनकी बातों में।

शेखर और पूर्णिमा ने अपने बेटे का नाम प्रदीप्त रखा। अपने नाम के अनुरूप ही वह सुंदर, सरल व कुशाग्र बुद्धि का था। कक्षा के तेज बच्चों में उसकी गिनती होती थी। एक दिन उसने निहायत भोलेपन से शेखर से कहा—“डैडी, हमारा दोस्त संदीप है न, उसके दादा और दादी उसी के घर में रहते हैं, हमारे दादा-दादी हम लोगों के साथ क्यों नहीं रहते?”

बेटे की बात का कोई उत्तर शेखर की समझ में नहीं आया। लेकिन पूर्णिमा ने उसे समझाया—“उन लोगों को यहाँ अच्छा नहीं लगता, इसीलिए वे यहाँ नहीं रहते।”

“मैं बड़ा होकर उनको अपने पास रखूँगा मम्मी। देखना हमारे पास उन्हें ज़रूर अच्छा लगेगा।” नन्हे से प्रदीप्त की बात सुनकर पति-पत्नी ने एक दूसरे की तरफ़ देखा लेकिन बोले कुछ नहीं।

हाई स्कूल में पहुँचने तक प्रदीप्त काफ़ी समझदार हो चुका था। जब-तब अपने दादा-दादी के पास अवश्य हो आता। उसे यह बात अच्छी नहीं लगती कि दादा-दादी यहाँ न रहकर बुआ के पास रहते हैं। उसने मन ही मन दृढ़ निश्चय सा कर लिया था कि बड़े होने पर वह दादा-दादी को अपने पास रखेगा। उसे कुछ सीमा तक इस बात का अंदाज़ हो गया था मम्मी-पापा उन्हें रखना नहीं चाहते। पौत्र के मन की आकांक्षा को देवशरण और शांति ने भी समझ लिया था। उसका मन उनकी तरफ़ से ऐसा ही बना रहे इस बात को ध्यान में रखकर प्रदीप्त को बहुत अधिक प्यार करते

हुए भी दादा-दादी ने उसे आई.ए.एस. बनने का आशीर्वाद नहीं दिया। पता नहीं आई.एस.एस. बनकर शेखर की तरह वह भी हमारी ओर से उदासीन न हो जाए। यही सोचा देवशरण और शांति ने।

समय का चक्र चलता रहा। जिस पौत्र को आई.ए.एस. बनने का आशीर्वाद दादा-दादी ने कभी नहीं दिया। संयोग से वह आई.ए.एस. ही बन गया। वृद्ध दंपत्ति ने सुना तो जहाँ हृदय के एक कोने में हर्ष की अनुभूति हुई वहीं दूसरी तरफ़ भय भी प्रच्छन्न हो आया। हमारा प्यारा प्रदीप्त कहीं बदल न जाए? लेकिन ऐसा नहीं हुआ। प्रदीप्त आशीर्वाद लेने सबसे पहले दादा-दादी के पास ही पहुँचा। मंसूरी प्रशिक्षण के मध्य भी जब कोई अवकाश मिलता तो प्रदीप्त अपने दादा-दादी के पास ही आता। उसे इस बात का संतोष था और वह इसे भगवान की कृपा ही मानता जो उसकी नौकरी लगने तक उसके दादा-दादी की छाया उस पर बनी रही।

लखनऊ में जब प्रदीप्त की प्रथम नियुक्ति और रहने के लिए क्वार्टर भी मिल गया तब वह सबसे पहले बुआ के पास गया। बुआ एवं दादा-दादी का चरण-स्पर्श कर अत्यंत आदरपूर्वक बोला—“आप सभी को अब मेरे साथ चलना होगा। मुझे क्वार्टर मिल गया है। अब मैं अकेला नहीं रहूँगा।”

पौत्र की बात से वृद्ध दंपत्ति का मन गर्व से भर आया। उन्हें लगा जैसे वे कोई सुखद स्वप्न देख रहे हैं। अत्यंत तृप्त मन से देवशरण ने कहा—“बेटा, तुम्हारे कह देने मात्र से हमारा मन तृप्त हो गया। जैसे हमारा स्वप्न साक्षात् हो गया हो। लेकिन अब हम जहाँ हैं वहीं रहने दो बेटे।”

“दादा जी जब तक मैं अपने पैरों पर नहीं खड़ा था, तब तक विवश था। लेकिन आप लोगों के आशीर्वाद से मैं अब सब तरह से सक्षम हूँ।” थोड़ा रुककर उसने रंजना को संबोधित कर अत्यंत आग्रह पूर्ण शब्दों में कहा—“बुआ जी आप दादाजी और दादाजी की तैयारी कर दें और हाँ आप भी चलेंगी। मेरा घर आप लोगों की चरण-रज एवं आशीर्वाद से पवित्र हो जाएगा।”

रंजना ने सोचा—जो काम शेखर भइया को करना था उसे मेरा भतीजा कर रहा है। लेकिन इस सुख को उठाने के लिए अब डाल पर पके आम से माता-पिता जीवित ही कितने दिन रहेंगे? हाँ उन्हें इस बात का संतोष

ज़रूर रहेगा कि बेटा न सही उसके बेटे ने तो उन्हें सिर-आँखों पर बैठाया। सोचती हुई प्रदीप्त की बात का उत्तर देती हुई रंजना ने कहा—“आज तुम्हारे कारण हम लोगों के भी भाग्य खुल गए। तुम जैसा भतीजा पाकर मुझे गर्व है। तुम कह रहे हो तो तुम्हारे साथ ज़रूर चलूँगी बेटे।” भाव विभोर रंजना की आँखें हर्षातिरेक में भर आयीं।

दूसरे दिन प्रदीप्त अपनी बुआ व दादा-दादी के साथ लखनऊ आ गया। क्वार्टर में सब कुछ सही ढंग से व्यवस्थित कर दिया गया। रात्रि में भोजनोपरांत बड़ी देर तक देवशरण-शांति, रंजना व प्रदीप्त बातें करते रहे। देवशरण को लगा जैसे कोई नया सवेरा हुआ हो। बार-बार पौत्र के प्रति मन भर आ रहा था। काफ़ी देर बाद प्रदीप्त अपने कमरे में गया।

डेढ़-दो माह अच्छी तरह बीत गए। अब तक रंजना अपने घर जा चुकी थी। देवशरण और शांति को प्रदीप्त के पास अच्छा लग रहा था। इस बीच प्रदीप्त एक बार अपने माता-पिता के पास भी हो आया। लेकिन उनसे दादा-दादी का अपने पास रहने का जिक्र नहीं किया। पूर्णिमा ने जब उसके पास जाने की इच्छा प्रकट की तो प्रदीप्त ने कहा—“माँ, वहाँ मेरे भोजनादि के लिए रसोइया व चपरासी हैं। आप परेशान न हो। जब मैं ज़रूरत समझूँगा आपको ले चलूँगा।” दरअसल प्रदीप्त किसी अवसर विशेष पर अपने माता-पिता को अपने पास बुलाना चाहता था। पूर्णिमा ने भी अधिक जोर नहीं दिया।

एक दिन अचानक लखनऊ से फ़ोन आया कि प्रदीप्त दुर्घटना में घायल हो गया है। शेखर और पूर्णिमा के हाथ-पाँव फूल गए। अविलंब वे लखनऊ के लिए निकल पड़े। लगभग छह घंटे के सफ़र के बाद वे लोग लखनऊ पहुँचे।

बंगले में कदम रखते ही शेखर चौंक गया, सामने आराम कुर्सी पर उसके माता-पिता इत्मीनान से बैठे हुए थे। क्या इन्हें एक्सीडेंट की खबर पहले ही मिल गई? और मिल गई तो ये लोग आए कैसे? लगता है रंजना भी साथ आ गई है। शेखर की समझ में कुछ नहीं आ रहा था। उन्हें परेशान देखकर देवशरण ने सहज भाव से पूछा—“क्या हुआ बेटे? कुछ परेशान दिख रहे हो सब ठीक तो है?”

शेखर और भी दुविधा में पड़ गया। यहाँ की खबर सुनकर हम लोग भागे आए और पिताजी उलटे उसी से पूछ रहे हैं कि सब ठीक तो है। शेखर ने उसी परेशानी के साथ पूछा—“हम लोग तो ठीक हैं पिताजी, लेकिन यहाँ हमारा प्रदीप्त कैसा है?”

“प्रदीप्त? उसे क्या हुआ? वह तो एकदम ठीक है।” देवशरण ने आश्चर्य व्यक्त किया।

“हमारे पास आज सुबह ही फ़ोन आया कि वह एक्सीडेंट में घायल हो गया है।” शेखर ने घबरायी हुई आवाज़ में कहा। देवशरण को पता था कि प्रदीप्त बाहर ऑफ़िस में बैठा कुछ सरकारी कार्य देख रहा है। फ़ोन की बात उनकी समझ में नहीं आयी, पर परेशान शेखर को देखकर उन्होंने उसे अपने करीब रखी कुर्सी पर बैठने का इशारा करते हुए स्नेह से कहा—“घबराओ मत आराम से बैठो। उसे कुछ नहीं हुआ है। किसी ने ऐसे ही फ़ोन कर दिया होगा। वह देखो आ गया प्रदीप्त।”

प्रदीप्त ने माता-पिता का चरण-स्पर्श किया। उसे स्वस्थ देखकर जहाँ शेखर और पूर्णिमा के मन को तसल्ली सी मिली वहीं जैसे क्षण भर में सब कुछ समझ में भी आ गया। पूर्णिमा ने नाराज़गी जाहिर की—“ये क्या बात हुई प्रदीप्त हमें इतना परेशान क्यों किया? कुछ कहना ही चाहते थे तो सीधे तौर पर कह देते। तुम्हारे फ़ोन से हमारी क्या हालत हुई होगी तुम समझ सकते हो।”

“पता है माँ, मैं जानता था कि आप लोग घबराकर तुरंत आएँगे। छोटे मुँह बड़ी बात कह रहा हूँ इसलिए क्षमा कीजिएगा। जैसे आप लोग मेरे प्रति स्नेह और ममता से पूर्ण हैं उसी प्रकार दादा-दादी भी आपके प्रति स्नेह और ममता से पूर्ण हैं। आप लोगों के प्रति उनके दिल में कितना अनुराग भरा है यही बताने के लिए मुझे यह नाटक करना पड़ा। आपकी तरफ़ से उपेक्षित रहने के कारण वे लोग मेरे साथ आने से भी कतरा रहे थे। पर मैं उन्हें विश्वास दिलाकर ले आया।” अबाध गति से बोलता प्रदीप्त अपनी बात कहकर चुप हो गया।

शेखर को अपनी गलती का एहसास हो गया था। अपने माता-पिता को जो आदर, सम्मान और प्यार वह नहीं दे सका उसे उसके बेटे ने दिया।

पुत्र की समझदारी और बड़प्पन को मन ही मन में सराहने के साथ उसे अपने लिए शर्म और ग्लानि की अनुभूति हुई। कितने लंबे समय से वह अपने माँ-बाप के साथ उपेक्षित व्यवहार करता चला आ रहा है। आज उसी के पुत्र ने उसे अपने माता-पिता के प्रति कर्तव्य का बोध कराया। सोचते हुए पश्चाताप से पूर्ण शेखर ने माता-पिता का चरण स्पर्श कर क्षमा माँगते हुए कहा—“पिताजी, हम क्षमा के योग्य कदापि नहीं हैं फिर भी...”

“बेटे।” शेखर के सिर पर हाथ रखकर उसकी बात बीच में ही काटकर देवशरण ने अवरुद्ध कंठ से कहा—“कोई बात नहीं...जीवन में यह सब चलता रहता है। फिर भी यदि तुम यह समझते हो कि तुमसे गलती हुई है तो हमारी तरफ से तुम दोनों को शुभ आशीष के साथ क्षमा भी है। सुबह का भूला शाम को घर आ जाए तो वह भूला नहीं कहलाता।”

उग्र स्वभाव की होने के बावजूद पूर्णिमा को भी अपनी गलती का बोध हुआ। उसने भी सास-श्वसुर का चरण-स्पर्श कर क्षमा माँगी।

दूसरे दिन शेखर ने अपने माता-पिता से अपने साथ चलने का अनुरोध किया लेकिन उन्होंने स्नेह के साथ मना करते हुए कहा—“अब हमें प्रदीप्त के पास ही रहने दो बेटे। जो बीत गया अतीत बन गया उसके लिए मन में ग्लानि मत करना। जो सामने है वह अति सुंदर है। प्रदीप्त भी तो अपना ही है। अब उसके पास से जाने को हमारा मन नहीं करता। तुम इसके लिए बुरा मत मानना।” पिता की बात सुनकर शेखर निरुत्तर हो गए।

अनमोल तोहफ़ा

वेद प्रकाश के देहांत को पाँच वर्ष हो रहे थे। इधर उनकी पत्नी वसुंधरा भी कुछ अस्वस्थ-सी रहने लगी थीं। दिन-प्रतिदिन उनका स्वास्थ्य गिरता जा रहा था। एक दिन उनके मन में विचार आया कि वह अपनी चल-अचल संपत्ति का अपने सामने अपने तीनों बच्चों को बराबर का हकदार बना दें, ताकि उनके बाद उनकी ज़मीन-जायदाद और धन-दौलत को लेकर बच्चों में मतभेद वाली स्थिति न पैदा हो। बड़ा पुत्र युगप्रकाश, छोटा रमेशप्रकाश तथा सबसे छोटी बेटी पूर्णिमा थी। वेदप्रकाश तीनों बच्चों की शादी अपने जीवन-काल में ही करके ज़िम्मेदारी से मुक्त हो चुके थे। बड़ा पुत्र युगप्रकाश अत्यंत बुद्धिमान, समझदार व सरल स्वभाव का था। इतना ही नहीं वह अपने घर-परिवार का प्रकाश स्तंभ सदृश था। उसकी पत्नी सौम्या भी अपने नाम के अनुरूप सुंदर, सीधी व सुशील स्वभाव की शिक्षित महिला थी एवं विपुल और वैभव नामक दो प्यारे-प्यारे बच्चों की माँ भी। युगप्रकाश के स्वभाव के सर्वथा विपरीत रमेशप्रकाश बदमिज़ाज़ था। माता-पिता अथवा बड़े भाई के साथ सज्जनता से पेश आना उसने नहीं सीखा था। पत्नी पुष्पा इतनी तेजतर्रार स्वभाव की थी कि स्वयं रमेश की भी हिम्मत नहीं थी वह पत्नी की इच्छा के बग़ैर कोई काम करने का साहस करे। रमेश और पुष्पा की तीन बेटियाँ थीं—मेघा, लता और तरु। पुष्पा को यह बात भी अख़रती कि बड़े भाई के दो बेटों की तुलना में भगवान ने उसे तीन-तीन बेटियाँ दे दीं। पूर्णिमा की ससुराल लखनऊ में थी। तीज-त्योहार पर वह आकर माँ और भइया-भाभी के पास रह जाती।

वसुंधरा अपने दोनों बेटों और बहुओं के स्वभाव से भिन्न थी। पति के देहांत के बाद भी वह अधिकतर उनके बनवाए बँगले में ही रहती।

युगप्रकाश सप्ताह में एक बार आकर उनका हाल ले लेते। कभी-कभी अपने साथ भी लेते जाते। लेकिन रमेश का दिल्ली से आना संभव नहीं होता। दूसरे शब्दों में वह बिना अपने मतलब के कहीं जाना-आना भी नहीं चाहता।

वसीयत लिखने की माँ की आकांक्षा जानने पर युगप्रकाश को कुछ अच्छा-सा नहीं लगा। उसने माँ से कहा—“माँ, वसीयत आदि की बात मुझे पसंद नहीं है। आपका आशीष हम पर हमेशा बना रहे बस इससे अधिक कुछ नहीं चाहिए।”

“तू ठीक कहता है बेटा...पर मेरा भी तो कुछ कर्तव्य है। पका आम हूँ...कब टपक पड़ूँ..कौन जाने?” वसुंधरा ने बेटे के मन की बात समझते हुए उसे समझाना चाहा।

“ठीक है आपकी इच्छा है तो किसी भी दिन यह काम हो सकता है।” माँ की बात को न काटते हुए भी युगप्रकाश ने उस विषय को वहीं समाप्त कर दिया।

सप्ताह भर बाद अचानक किसी सरकारी काम से युगप्रकाश को तीन-चार दिनों के लिए बाहर जाना पड़ गया। उन्हीं दिनों दिल्ली से रमेश अपने काम से आ गया। माँ ने वसीयत लिखने का ज़िक्र रमेश से भी किया। वह तो बहुत खुश हुआ। इस समय भइया भी नहीं हैं। अपनी इच्छानुसार वह माँ से लिखवा सकता है। रमेश ने सोचा। लेकिन माँ ने उससे कहा—“हमारी चल और अचल संपत्ति के तीन बराबर भाग होने चाहिए। युग, तुम्हारे व पूर्णिमा के लिए वसीयत में यह भी अंकित रहेगा कि उसमें लिखी बातें तुम तीनों पर तब लागू होंगी जब मैं नहीं रहूँगी। अपने जीवित रहने तक अपनी संपूर्ण संपत्ति की अधिकारिणी मैं ही रहूँगी।” वसुंधरा ने बहुत सोच-समझ कर अपना निर्णय सुनाया। अपने जीवन में ही सब कुछ लड़कों को सौंप देने से हो सकता है। बच्चे उसे भार समझ लें और दूध में पड़ी मक्खी की तरह निकाल कर फेंक दें।

रमेश ने कुछ सोचते हुए कहा—“माँ, एक बात तो सोचिए, भाई साहब को किस चीज़ की कमी है। प्रथम श्रेणी के गजेटेड पोस्ट के अधिकारी हैं जीप, बंगला, नौकर, चपरासी...सब कुछ तो उन्हें उपलब्ध है...फिर...”

“वह सब तो उसकी योग्यता के बूते पर है, लेकिन तू कहना क्या चाहता है रमेश? पहेलियाँ न बुझाकर साफ़-साफ़ कह।”

“यही कि पिताजी और आपकी संपत्ति की ज़रूरत बस मुझे और पूर्णिमा को है। भाई साहब तो हर तरह से संपन्न हैं।” हिचकते हुए भी रमेश ने अपने मन की कुटिलता माँ के सामने प्रकट की। “कैसी बातें करता है मेरे लिए तीनों बच्चे बराबर हैं। इस तरह की घटिया बात कभी सोचना भी नहीं।” माँ ने रमेश को फटकारा।

उस समय तो रमेश माँ की बात सुन कर चुप रह गया। वह समझ गया उनके सामने उनकी बात का प्रतिवाद करना ठीक नहीं है लेकिन बाद में उसने वही किया जो वह चाहता था। वसीयत के कागज में उसने चल-अचल संपत्ति के तीन भाग ही रखे, लेकिन दो पर उसने अपना अधिकार रखा और एक पर पूर्णिमा का। माँ की इच्छानुसार अपने जीवित रहने तक संपूर्ण जायदाद की अधिकारिणी उन्हें ही लिखा। यह सब उसने इतनी चालाकी से किया कि माँ को भनक भी न हो सकी। वसुंधरा से सादे स्टॉप पेपर पर दस्तखत करवा लिए। बिना पढ़े ही वसुंधरा ने उससे इतना अवश्य कहा कि इसकी तीन प्रतियाँ करवाकर आपस में ले लो। मूलप्रति मेरे पास ही रहेगी। लेकिन उनकी इस बात को भी रमेश टाल गया। युग के सामने भेद खुलने के डर से।

वसीयत का काम आनन-फानन में पूरा कराकर बड़े भाई के आने से पूर्व ही रमेश दिल्ली चला गया। पत्नी पुष्पा भी पति की चतुराई पर खुश हो गई।

काफ़ी दिनों बाद एक दिन बात-बात में ही वसुंधरा ने युगप्रकाश को बताया कि—“पिछली बार जब रमेश आया था तब मैंने वसीयत का काम पूरा करा लिया। तू मना करता रहता था न इसलिए मैंने सोचा रमेश के माध्यम से ही यह ज़रूरी काम हो जाए। ठहर मैं तुझे कागज़ दिखाती हूँ।”

“रहने दो माँ—आपके पास है तो देखना क्या है।” सहज भाव से युगप्रकाश ने कहा। लेकिन तब तक वसुंधरा फाइल लेकर आ गयी थी। युगप्रकाश की तरफ बढ़ाती हुई बोली—“देख लो बेटा...सब ठीक तो लिखा है?”

कुछ अधिक इच्छा न होने पर भी माँ के देने के कारण युगप्रकाश को कागज देखना पड़ा। लेकिन वसीयत पढ़कर वह आश्चर्यचकित रह गया।

ऐसा क्या माँ की जानकारी में हुआ होगा...पर यदि माँ की मर्जी से ऐसा लिखा जाता तो वह उसे स्टॉप पेपर दिखाती ही क्यों? पर हस्ताक्षर तो माँ के ही हैं। क्या बिना पढ़े उन्होंने दस्तखत कर दिया। सोचते हुए कागज उसने माँ को लौटा दिया। रमेश ने कोरे स्टॉप पेपर पर माँ का हस्ताक्षर लिया होगा, यह बात युगप्रकाश के मन-मस्तिष्क में नहीं आ सकी।

माँ ने कागज पकड़ते हुए निश्छल मन से पूछा—“सब ठीक लिखा है न बेटा?”

“हाँ माँ, सब ठीक है।” युगप्रकाश ने भी सर्वथा सहज भाव से ही जवाब दिया। उन्हें वसीयत से लेना-देना कुछ नहीं था। पढ़कर दुख भी नहीं हुआ। लेकिन आश्चर्य जरूर हुआ। उसने सौम्या से भी उसका जिक्र करना निरर्थक समझा। माँ को भी उसे बताने का ध्यान नहीं रहा और सब कुछ ठीकठाक चलता रहा।

थोड़े दिनों के लिए वसुंधरा रमेश के पास रहने दिल्ली आयी। उसकी तीनों बेटियाँ दादी माँ को पाकर बहुत खुश हुईं। तीनों का अपनी दादी के पास ही सोना, बैठना, खाना और कहानी सुनना नित्य का नियम बन गया। एक दिन बड़ी लड़की मेघा ने हठीली आवाज़ में कहा—“दादी माँ, अब हम आपको कभी जाने नहीं देंगे। आप हमारे पास ही रहेंगी। आपके पास हमें अच्छा लगता है दादी माँ।”

सुनकर वसुंधरा मुस्करा पड़ी और उसे चिपटाकर प्यार से बोली—“बेटे, तुझे मालूम है न कि तेरे दो भैया विपुल और वैभव भी हैं। वह दोनों भी ठीक यही कहते हैं, जो तुमने कहा है। बता मैं क्या करूँ?” मेघा की समझ में तुरंत आ गया। “अच्छा ठीक है दादी माँ। थोड़े दिन हम लोगों के पास रहकर फिर थोड़े दिन भइया के पास रहिए। तब तो भैया हम पर गुस्सा नहीं करेगा।”

वसुंधरा हँस पड़ी। इतनी छोटी सी मेघा और बात इतनी समझदारी की। उसे प्यार करती हुई वह बोली—“मेरी नन्हीं-सी रानी बिटिया बड़ी समझदार हो गई है।”

सास के सोने के आभूषणों पर पुष्पा की नज़र हमेशा रहती थी। छोटे-बड़े कई आभूषण वह वसुंधरा से पहले भी हथिया चुकी थी। इस बार

उसकी नज़र सास के हाथों में पड़ी चार सोने की चूड़ियों पर पड़ी। उसने सोचा माँ जी हमेशा सौम्या दीदी के ही पास रहती हैं। कभी भी अपनी बातों में उलझाकर सौम्या दीदी उनसे चूड़ियाँ झटक सकती हैं। उससे पहले यदि मैं किसी तरह चूड़ियों पर अधिकार कर लूँ तो मेरे मन की बात बन जाए। सोचने के साथ ही पुष्पा चूड़ियाँ हथियाने के तरीकों को ढूँढ़ने में लग गई।

बस बात मन में आयी और हल भी मिल गया। अगले दिन जब वसुंधरा बच्चों को कहानी सुनाने में मगन थी, पुष्पा सिर में तेल लगाने पहुँची—“माँ जी, मुद्दत हो गई आपके सिर में तेल डाले...आइए थोड़ा लगा दूँ।”

अवाक सी वसुंधरा पुष्पा को देखती ही रह गई। यह सूरज आज पश्चिम में कैसे निकल आया? कभी सीधे मुँह बात न करने वाली बहू इतना मीठा रस कैसे धोल रही है? कुछ बात जरूर है। वसुंधरा ने सोचा, लेकिन चेहरे पर बिना कोई भाव प्रकट किए सहज भाव से ही बोली—“रहने दो बहू, सिर में दर्द नहीं।” लेकिन पुष्पा नहीं मानी। आज तो वह तेल रूपी मक्खन लगाने ही आयी थी। तेल मालिश करती हुई इधर-उधर की छिटपुट बातें करते-करते वह अपने उद्देश्य पर आ गई—“माँ जी, यहाँ के रिवाज़ के अनुसार अपनी कॉलोनी में सभी औरतें हाथों में सोने की चूड़ियाँ जरूर पहनती हैं। मैंने इनसे कई बार कहा खरीदने को पर ‘पैसा नहीं है’ कह कर टाल जाते हैं। जब कॉलोनी की सभी महिलाएँ साथ बैठती हैं तो मुझे चूड़ियों की बात चलने पर बहुत झेंपना पड़ता है।” थोड़ा विराम देकर पुष्पा ने पुनः कहा—“माँ जी, यदि कुछ दिन के लिए आप अपनी चूड़ियाँ मुझे दे दें तो सबके सामने मेरा मन और सिर दोनों ऊँचे हो जाएँगे। जब मेरी चूड़ियाँ खरीद ली जाएँगी तब मैं आपको लौटा दूँगी।” पुष्पा ने वसुंधरा की चूड़ियों पर आँख गड़ाए कहा।

अब वसुंधरा को समझ में आया कि यह मक्खनबाजी क्यों की जा रही थी। लेकिन उसने पुत्रवधू की बात को टाला नहीं, अपितु तुरंत ही हाथों से निकालकर चारों चूड़ियाँ उसे पकड़ा दिया। यह समझ कर ही कि अब इनके पुनः हासिल करने की बात सोचना बेवकूफी होगी। हाँ इतना अवश्य उसने पुष्पा से कहा—“मुझे तो स्वयं इस बात का अहसास है कि अब

इन सब चीजों की मुझे क्या ज़रूरत है। यह बात और है कि दो तुमको और दो सौम्या को देने के लिए सोचा था। पर अब ठीक है। तुम रखो सौम्या को कुछ और दे दूँगी।”

चूड़ियाँ प्राप्त कर पुष्पा बहुत खुश हुई। माँ जी से चूड़ियाँ माँगने के तरीके की धाक जमाती हुई वह रमेश से बोली—“देखो न मैंने कितनी सफ़ाई से माँ जी से चूड़ियाँ उतरवा लीं और वह ज़रा-सा भी बुरा नहीं मानी। बल्कि खुशी-खुशी तुरंत उतार कर दे दीं।”

रमेश ने पत्नी को शाबासी के साथ बधाई दी। यह कह कर कि तुमने ठीक उसी चतुराई से काम किया जैसे मैंने वसीयत का और दोनों खिलखिला कर हँस पड़े।

एक दिन बातों ही बातों में वसुंधरा ने रमेश को इस बात की जानकारी दे दी कि उसने वसीयत का कागज युगप्रकाश को दिखला दिया है। वसीयत देखकर भाई की प्रतिक्रिया जानने हेतु रमेश ने माँ से पूछा—“माँ, भइया ने कुछ कहा तो नहीं?”

“नहीं, उसने एक नज़र देखा और ठीक है कह कर मुझे पकड़ा दिया। वह तो देखना भी नहीं चाहता था मैंने ही उसे जबरदस्ती पकड़ा दिया।” वसीयत को देखकर बड़े भाई ने कुछ नहीं कहा, सुनकर रमेश को अपने छल-कपट पर गर्व हुआ।

लगभग दो माह रमेश के पास रहकर वसुंधरा वापस आ गई। स्वयं रमेश ही उसे छोड़ने आया। युगप्रकाश, भाभी व बच्चे सभी घर पर ही थे। भाई से आमना-सामना हुआ, बातचीत हुई। भोजन-नाश्ता भी साथ हुआ। लेकिन इस बीच वसीयत के बारे में युगप्रकाश ने रमेश से कुछ नहीं कहा। कोई बातचीत नहीं, कोई शिकायत नहीं...अपितु सब कुछ पूर्ववत् सा ही चलता रहा। यद्यपि चोर की दाढ़ी में तिनका वाला भय रमेश में बराबर बना रहा...पर कोई बात न होने पर वह निश्चित मन से दिल्ली चला गया।

लगभग डेढ़-दो माह अच्छी तरह से सरक गए। वसुंधरा युगप्रकाश और सौम्या के पास ही थी। अकेले जैसे समय काट खाने को दौड़ता इस कारण बच्चों के पास रहना उसे अच्छा लगता। फिर सौम्या जैसी सुशील और व्यवहारकुशल बहुएँ आजकल मिलती ही कहाँ हैं। सोचकर वसुंधरा का

मन पुलकित हो उठता। जब तक वह सौम्या के पास रहती, सौम्या हर तरह से उसकी सेवा और देखभाल में लगी रहती। विपुल और वैभव को भी दादी माँ के पास ही अधिक अच्छा लगता।

इसी बीच एक दिन रमेश का फ़ोन आया। सौम्या ने रिसीवर उठाया। उधर से रमेश ने बताया—“भाभी, हम लोग अगले सप्ताह गोवा घूमने जा रहे हैं पर पैसे कुछ कम हैं। माँ से या भाई साहब से कहकर कम से कम 25 हजार का चेक या बैंकड्राफ्ट भिजवा दीजिए।”

“ठीक है, आप परेशान मत होइए। चेक पहुँच जाएगा।” सौम्या ने कहा भाभी को धन्यवाद कहने के साथ रमेश ने रिसीवर रख दिया।

संध्या को युगप्रकाश आया तो वसुंधरा ने कुछ अनमने मन से उससे कहा—“मैं नहीं समझ पा रही हूँ कि जब पैसे नहीं थे तो रमेश को घूमने का शौक क्यों हो आया?” लेकिन युग ने सहज भाव से ही कहा—“ठीक है माँ, अच्छा है घूम आएगा। मैं कल प्रबंध करके पैसे भेज दूँगा।” माँ निरुत्तर हो गई। अगले दिन युग ने रुपये भेज दिए।

समय अपनी गति से सरकता रहा। काफ़ी समय बाद भी वसुंधरा को रमेश द्वारा वसीयत में की गई चालाकी का पता नहीं चल सका। इस बात का अनुमान युग प्रकाश को हो गया था। वह माँ के मन की निर्मलता को अच्छी तरह जानता था। और यह भी कि आज भी माँ उससे जिस स्नेह और ममता से बातें करती हैं उसमें छल और कपट की कोई बू नहीं रहती। युग को संपत्ति में हिस्से का तिनके भर का भी लालच नहीं था लेकिन उसे दुख इस बात का था कि उसके साथ रमेश ने जैसा धोखे का काम किया उसकी उसने कल्पना भी नहीं की थी।

कब किसके ऊपर कैसा समय आ जाएगा कोई नहीं जानता। माँ के वसीयत पर मनमाना अधिकार करने के साथ, लगभग डेढ़-दो लाख के माँ के आभूषणों को हथियाने के बाद, घूमने के लिए पच्चीस हजार रुपये माँगकर पति-पत्नी फूले नहीं समा रहे थे। अब भी उनका मन साफ़ नहीं था। इसी बीच अचानक एक दिन रमेश गंभीर रूप से अस्वस्थ हो गया। एम्स में भरती होने और पूरी जाँच के बाद पता चला कि रक्तचाप अत्यधिक बढ़ जाने के कारण उनकी दोनों किडनी बुरी तरह से प्रभावित होकर

निष्क्रिय हो चुकी हैं। घबराकर पुष्पा ने अविलंब वसुंधरा और युग प्रकाश को सूचित किया। खबर मिलते ही माँ, भाई और सौम्या तुरंत दिल्ली पहुँचे। अस्पताल में भरती रमेश को डायलिसिस पर रखा गया था। पुष्पा माँ से लिपटकर रो पड़ी, स्वयं परेशान वसुंधरा ने उसे धैर्य बँधाया। युगप्रकाश ने एम्स के डॉक्टर कर्ण से स्थिति की पूरी जानकारी ली। दोनों गुर्दों ने काम करना बंद कर दिया था। अब या तो गुर्दे का प्रत्यारोपण हो अथवा डायलिसिस यही दो उपचार थे।

युगप्रकाश ने पता किया लेकिन अस्पताल में गुर्दा उपलब्ध नहीं था। कुछ अन्य संस्थानों पर भी जहाँ संभावना थी पूछताछ की लेकिन कहीं से भी गुर्दा प्राप्त नहीं हो सका। निराश होने के बावजूद युगप्रकाश ने हिम्मत नहीं हारी। उसने सभी अखबारों, आकाशवाणी व दूरदर्शन पर विज्ञापन दे दिया लेकिन इसमें भी उनका प्रयास निष्फल सिद्ध हुआ।

रमेश डायलिसिस पर चलते रहे। जीवन और मौत का आमना-सामना था। यह लड़ाई कब तक चलेगी कोई नहीं जानता था लेकिन भयभीत और दुखी तो सभी थे। युगप्रकाश अधिक चिंतित थे। अभी भाई की उम्र ही क्या है? बिलकुल कच्ची-सी गृहस्थी और छोटे-छोटे बच्चे। उनके मन में तो पहले भी रमेश के प्रति किसी प्रकार की दुर्भावना नहीं थी और इस संकट के समय में भाई के प्रति उनका हृदय गंगा-यमुना सा पवित्र, निश्छल और सहानुभूतिपूर्ण हो गया। रमेश की जीवन-रक्षा के लिए वह दिन-रात चिंता और उलझन में डूबे रहते।

रमेश की अस्वस्थता के बारे में सुनकर सभी संबंधी उसे देखने के लिए आ-जा रहे थे। उसकी ससुराल से भी लोग आए। पूर्णिमा भी अपने पति के साथ आयी। सब एक ही बात कहते—ओह ऐसी बीमारी ने आ घेरा जिसका उपचार कितना कठिन है। इससे अधिक किसी से अपेक्षा भी क्या की जा सकती थी?

अन्य कोई साधन न देख कर युगप्रकाश ने डॉक्टर से अपना एक गुर्दा भाई को प्रत्यारोपित करने की आकांक्षा व्यक्त की। डॉक्टर ने उन्हें ध्यान से ऊपर से नीचे तक देखा। वह उन्हें स्वस्थ दिखे। उनकी आयु सीमा भी उन्हें ठीक लगी। पर इसके बाद भी ब्लड ग्रुप व अन्य टेस्ट में जरूरी

समानताएँ होने पर ही किडनी प्रत्यारोपित हो सकती थी। युगप्रकाश ने माँ, पत्नी अथवा परिवार के किसी भी सदस्य को अपनी इस आकांक्षा की जानकारी नहीं होने दी। जब डॉक्टर ने उनका ब्लड ग्रुप रमेश से मिलता हुआ पाया, तब उनके अन्य परीक्षण भी किए। युगप्रकाश पूर्ण स्वस्थ थे तथा सब कुछ आपरेशन के समर्थन में निकला, अतः डॉक्टर उनकी किडनी निकालने और रमेश को प्रत्यारोपित करने के लिए तैयार हो गए। साथ ही में उन्होंने ऑपरेशन के पश्चात मरीज द्वारा बरतने वाली सावधानियों और परहेज से भी उन्हें अवगत कराया जो दोनों भाइयों के लिए अत्यावश्यक था।

जब वसुंधरा को युग के त्याग पूर्ण आकांक्षा की जानकारी हुई तब उसकी ममता तड़प उठी। एक बेटे के लिए दूसरा कितनी बड़ी कुर्बानी दे रहा है, अपने को खतरे में डाल कर। पति के निर्णय से सौम्या का हृदय भी कष्ट और चिंता से परिपूर्ण हो आया, लेकिन मन की पीड़ा को जुबान तक नहीं आने दिया। होंठों की सर्द आह के बीच पति के त्याग को चुपचाप स्वीकार कर लिया और परमपिता परमेश्वर से दोनों भाइयों के जीवन-रक्षा के लिए प्रार्थना करती रही।

पुष्पा को भी अपनी और रमेश के मन की तुच्छता का और बड़े भाई-भाभी के बड़प्पन का बोध तुरंत हो आया। पति के लिए चिंतित मन, जेठ के लिए भी पीड़ा से भर आया। हृदय में श्रद्धा और सहानुभूति के साथ जीवन रक्षा की शुभ कामना से परिपूर्ण हो वह सौम्या से भरे गले से केवल इतना बोल सकी...दीदी।

सौम्या ने उसे गले से लगा लिया और अवरुद्ध कंठ से बोली—“हमें साहस और धैर्य के साथ काम लेना होगा, पुष्पा। भगवान दोनों भाइयों के जीवन की रक्षा करेंगे।”

आपरेशन सफल रहा। परिवार के सदस्यों ने, संबंधियों ने तथा अन्य परिचित लोगों ने भाई का भाई के लिए आज के समय में त्याग का अनुठा उदाहरण देखा। युगप्रकाश के लिए तो सबकी जुबान से सराहना के ही शब्द फूट रहे थे।

धीरे-धीरे दोनों भाई स्वस्थ हो गए। डॉक्टर के निर्देशानुसार दवा, परहेज और सावधानियों पर पूरा ध्यान दिया जाता। रमेश भी छह माह का अवकाश लेकर सबके साथ घर आ गए।

बड़े भाई के त्याग और सुव्यवहार के कारण रमेश का मन ग्लानि और पश्चाताप से भर चुका था। अपने जीवन को जोखिम में डालकर भइया ने उसे जीवन दान देकर उबारा था। उनके इस ऋण से वह कभी उऋण नहीं हो सकेगा। एक वह है जो ज़मीन-जायदाद, रुपया-सोना के पीछे छल कपट करता रहा। आज वह सब कुछ काम न आया...हीरे जैसे भाई को अपनी संकुचित सोच के कारण पहचान भी न सका। सोचते हुए रमेश पीड़ा और पश्चाताप की भावना से भर कर माँ के पास पहुँचा और वसीयत के बारे में उन्हें हकीकत से अवगत कराया। वसुंधरा को पहले तो विश्वास नहीं हुआ। फिर रमेश को धिक्कारती हुई वह बोली—“ये कैसा घिनौना काम किया तुमने? तू नहीं जानता कि तेरे इस छल-कपट में युग मुझे भी शामिल समझता होगा, क्योंकि स्टॉप पेपर पर मेरा दस्तखत है।” रमेश के इस कार्य से वसुंधरा का मन उसके प्रति नफ़रत से भर उठा।

“नहीं माँ ऐसी बात नहीं है...मैं यह अच्छी तरह से समझता हूँ कि यह सब बेवकूफी आपकी अनभिज्ञता में की गई है।” अचानक ही युग ने प्रवेश किया और माँ की बात सुनकर रमेश की तरफ मुखातिब होकर बोला—“अपने मन में किसी प्रकार की ग्लानि मत करना रमेश। हमारे मन में एक दूसरे के प्रति त्याग और प्यार हमेशा बना रहे मेरी बस यही आंकाक्षा है। वसीयत में जो कुछ लिख गया है उसे हमारी तरफ से तोहफ़ा समझकर यथावत बना रहने दो।”

“अब मुझे अधिक शर्मिंदा न करें भइया। मेरे मन की मलिनता आपकी गंगाजल जैसी पवित्र विचारधारा से शुद्ध हो गई है। अपने जीवन को खतरे में डालकर आपने मुझे जीवनदान का जो अनमोल तोहफ़ा दिया है उससे मैं कभी उऋण न हो सकूँगा।” कहने के साथ ही रमेश भाई के चरणों में झुक गया।

प्रायश्चित

ऋषिकेश के मंदिरों के मनोरम व पवित्र धाम के चारों तरफ छायी हरियाली देवालियों के बाह्य सौंदर्य को द्विगुणित कर रही थी। हर तरफ सफेद, पीले, गुलाबी व सुर्ख लाल रंग के गुलाब के फूल पौधों पर लदे झूम रहे थे। मौसम से विदा हो रहे गेंदे के पुष्प समूह अभी अपनी पीली मखमली आभा बिखरने में पूर्ण सक्षम थे। गौतम ने ऋषिकेश के इस प्राकृतिक सौंदर्य से परिपूर्ण मंदिरों के प्रांगण में प्रवेश किया तो हरियाली के साथ भक्तिगीत की मंद-मंद ध्वनि में गुंजित हो रही मधुर आवाज़ ने उसके नेत्र व मन को विभोर कर दिया। उसने सब तरफ विचरणकर प्रत्येक मंदिर व देवालय के सौंदर्य व महत्ता को जाना।

हठात एक शिवालय के समक्ष वह रुक गया। जो कुछ भी उसने अपने सामने देखा सहसा उस पर विश्वास नहीं हुआ, लेकिन उसने पहचानने में कोई भूल नहीं की थी—सामने आसन लगाए बैठा भक्त उसका सहपाठी देवेश कुमार है। वह कुछ क्षण अचरज में पड़ा रहा। पहले की तुलना में उसका रूप सर्वथा परिवर्तित था। बढी हुई दाढ़ी, गेरुआ वस्त्र और हाथ में जपने वाली माला। देवेश के इस बदले रूप में उसे पहचानने में थोड़ी दिक्कत अवश्य हुई लेकिन पहचान नहीं सका ऐसी बात नहीं थी।

सहसा गौतम को स्मरण हो आया। बी.एस.सी. करने के मध्य में ही देवेश कहीं चला गया था। कहाँ, यह पता नहीं चल सका। वह उसके घर भी गया था, लेकिन देवेश की माँ ने बताया कि वह अपने किसी मित्र के साथ कुछ दिन के लिए बाहर चला गया है। इसके बाद देवेश न कभी कॉलेज में आया और न ही उससे उसकी मुलाकात ही हुई। आज बीस वर्षों बाद मिला भी तो ऋषिकेश में साधुसंयासी के वेश में। गौतम अपने

को रोक न सका और देवेश के सामने जा खड़ा हुआ—“देवेश मुझे पहचाना, मैं तुम्हारा बी.एस.सी. का सहपाठी गौतम हूँ।”

देवेश ने दृष्टि उठाकर देखा—“अरे गौतम, मेरे दोस्त, कैसे हो? मैं तुम्हारी पहचान में आ गया आश्चर्य है। खैर कैसे आए हो—कहाँ हो आजकल? क्या कर रहे हो? परिवार कहाँ है? कहाँ रुके हो?” एक साथ प्रश्नों की बौछार-सी कर दी देवेश ने।

“मैं सरकारी काम से यहाँ आया था, काम खत्म हो गया तो सोचा भगवान के दर्शन भी कर लूँ। शाम को वापस दिल्ली चले जाना है।” थोड़ा रुककर गौतम ने पूछा—“लेकिन एक बात बताओ। यह साधु-संयासी बने यहाँ क्यों डेरा जमाए हुए हो? बच्चे परिवार कहाँ हैं? नौकरी छोड़ आए क्या?” “बस करो गौतम, मैं तुम्हारे किसी सवाल का जवाब नहीं दे पाऊँगा।” देवेश ने कहा और संयम खोकर रो पड़ा।

“अरे यह क्या—इसमें रोने की क्या बात है? नहीं बताना चाहते तो मत बताओ। मैं तुम्हें विवश नहीं कर रहा। वह तो इतने दिनों बाद मिला तो जानने की उत्सुकता हुई। छोड़ो कुछ और बातें करते हैं।” गौतम ने बात का रुख बदलना चाहा। लेकिन देवेश चुप नहीं रहा। उसने अपने बारे में जो कुछ बताया गौतम को उस पर सहसा विश्वास नहीं हुआ। लेकिन अविश्वास की भी कोई गुंजाइश नहीं थी। देवेश ने उसे बताया—

“बी.एस.सी. के अध्ययन के मध्य में ही मेरी मुलाकात एक अपराधी प्रवृत्ति के एक युवक जमाल से हो गई। वह मुझे अपनी बातों में उलझा कर अपने गुट के मुखिया सुलतान के पास ले गया, मैं उसकी बातों में आकर लूटपाट और हिंसा करने वाले गुट में शामिल हो गया। एक माह में कम से कम तीन-चार जगह लूटपाट, हत्या व बम आदि की वारदात करने का मुझे प्रति माह दस हजार मिलना तय हुआ। मैं बहुत प्रसन्न था। पढ़ने-लिखने का चक्कर खत्म और नौकरी खोजने की सरदर्दी से छुट्टी। मैंने शीघ्र ही अपनी नौकरी शुरू कर दी और जब भी कहीं उपयुक्त अवसर का पता चलता मैं अपने गुट के साथ वहाँ हमला बोल देता और मारकाट मचाकर धनादि लूट कर सफाई से नौ-दो ग्यारह हो जाता।”

“गौतम, हर पखवारे मेरे हाथों कितने ही निर्दोष लोग मारे जाते। कितने हँसते-मुस्कराते परिवारों को हम उजाड़ डालते और लाखों की संपत्ति लूट कर सुलतान के हाथों सुपुर्द कर देते। कभी-कभी अधिक धन लूटकर देने के फलस्वरूप मुझे अच्छा इनाम भी मिल जाता। दोस्त, अपराधी गुट में शामिल होने के साथ ही मैं वह हत्यारा बन गया था जो निर्दयता और कठोरता का पर्याय होता है। कहीं से भी मैं लूटपाट और हत्या करके आता लेकिन मुझे रत्ती भर भी कष्ट या पीड़ा का बोध नहीं होता। मैं संतुष्ट था। धन के लोभ ने मुझे विवेकशून्य कर दिया था।

पंद्रह-बीस दिनों में एक बार घर हो आता और अपने लिए खर्च का थोड़ा सा पैसा रखकर शेष माता-पिता के सुपुर्द कर देता। पिताजी ने कई बार सशंकित होकर पूछा—“बेटे किस विभाग में कौन सी नौकरी मिली है तुमको? एक बात का ध्यान रखना बेटा, किसी गलत अथवा अपराधी संगठन से कभी समझौता मत करना। धोखा खाना पड़ सकता है।” उनको शायद इस बात का शक था कि मैं सही काम नहीं कर रहा हूँ। वह सोचते थे—अभी ग्रेजुएट भी नहीं हो पाया फिर ऐसी कौन सी शानदार नौकरी मिल गई है जो अच्छी-खासी रकम उन्हें लाकर देता हूँ।

मैं उनसे बराबर झूठ बोलता रहा कि मैं एक स्तरीय कंपनी में टूर पर जाकर साक्ष्य और मैटर इकट्ठा करने का काम करता हूँ। वह मेरी बात पर कुछ हद तक तो विश्वास कर लेते, फिर भी उनका मन मेरी तरफ से आशंकित ही रहता।

धीरे-धीरे चार वर्ष बीत गए। छोटे-बड़े सभी तरह के अपराध करके मैं मस्त रहता। मनचाहा पैसा पाकर मैं संतुष्ट था। पुलिस की पकड़ से हमेशा दूर रहा। बड़े-बड़े बाल, नीचे की ओर मुड़ी बड़ी-बड़ी मूँछें और काले रंग का टाइट टी शर्ट व पैंट। यह मेरे व्यक्तित्व का दूसरा धिनौना रूप था। घर आने पर मैं पहले वाला देवेश बन जाता।

थोड़ा विराम देकर देवेश ने पुनः कहा—“गौतम, मैं छोटे-छोटे लूटपाट का धमाका तो करता ही रहता था लेकिन कई बड़ी लूटें और हत्याएँ भी मैंने कीं, जिसमें दो सबसे अधिक वीभत्स थीं। मैंने एक सेठ के बेटे की बरात को घेर लिया और जमकर लूटपाट की। लगभग पचास-साठ लाख

के आभूषण और कीमती वस्त्रादि थे। सब लूट लिया गया। विरोध करने पर दूल्हे और उसके भाई को भी खतम कर दिया। इस लूट और हत्या से मुझे अच्छी रकम और बख्शीश मिली।

दूसरा वीभत्स कांड मैंने अपनी शादी के बाद किया। इस तरह अपराधी जीवन व्यतीत करते-करते दस साल बीत गए। पिता जी ने कई बार जानने की उत्सुकता प्रकट की कि आखिर मैं कौन-सी नौकरी करता हूँ—लेकिन मैं कुछ न कुछ कह कर टालता ही रहा। सबकी दृष्टि में यही सत्य था कि मैं नौकरी करता हूँ, अतः मेरे विवाह के अच्छे-अच्छे प्रस्ताव आने लगे। मैंने तो मना किया लेकिन माँ और पिताजी के दबाव के कारण मुझे विवाह की स्वीकृत देनी पड़ी। सुंदर व सुशील स्वभाव की प्रिया को पसंद करके माँ ने मेरी शादी कर दी। प्रिया बहुत ही सीधी व सरल स्वभाव की लड़की थी। पर अब वह इस दुनिया में नहीं है।” कहने के साथ ही देवेश कुछ गंभीर हो गया। कुछ देर का विराम देकर पुनः बताना शुरू किया—“प्रिया ने मुझसे कितनी बार कहा कि मैं जहाँ नौकरी करता हूँ एक बार उसे भी घुमा दूँ लेकिन मैं बराबर उसे टालता रहा। हाँ उसके घूमने की आकांक्षा पूरी करने के लिए मैंने उसे नैनीताल, मंसूरी के साथ आगरा का ताजमहल आदि दिखा दिया। वह संतुष्ट हो गई। फिर उसने कभी घूमने की इच्छा प्रकट नहीं की। मेरे दो प्यारे-प्यारे बेटे भी हुए गौतम, मेरे माता-पिता, पत्नी, दोनों बेटे तथा छोटी बहन सब एक साथ हैंसी-खुशी रह रहे थे। बहन बी.ए. में पढ़ रही थी। मेरे बच्चों का भी अंग्रेजी स्कूल में दाखिला हो गया। मैं जब तब जाकर हाल-समाचार ले आता था।”

“अब तक मैं एक गुट विशेष का मुखिया बन गया था। एक बार जब मैं घर गया तो प्रिया ने बताया कि पिछले दिनों वह अपनी सहेली की शादी में बनारस गई थी। सहेली की शादी क्या होती वहाँ बड़ी हृदय-विदारक घटना घट गई। द्वाराचार के बाद ही बदमाशों के एक गिरोह ने धावा बोल दिया। वर-वधू के साथ कम से कम दस बारह लोगों की हत्या कर सब कीमती सामान व जेवरात लूटकर भाग खड़े हुए। यह घटना बताते-बताते प्रिया काफ़ी दुखी हो गई थी। सुनकर मुझे हलका सा सदमा पहुँचा। यह हत्या और लूट मैंने और मेरे गिरोह ने ही किया था, लेकिन प्रिया से इस

हकीकत को कैसे बताता? वैसे भी मैं चिकना घड़ा बन चुका था। जिस पर किसी तरह की पानी की बूँद नहीं ठहरती। ठीक उसी तरह छोटी-बड़ी किसी घटना का मुझ पर कोई प्रभाव पड़ने वाला नहीं था। लेकिन चूँकि यह मेरी प्रिय पत्नी प्रिया से संबंधित घटना थी। इसलिए मन में हलकी सी पीड़ा उभरी। उससे संवेदना प्रकट करते हुए मैंने कहा—“हाँ, यह ठीक नहीं हुआ प्रिया, पर किया भी क्या जाए? आजकल तो चारों तरफ लूट और हत्या का बोल-बाला सा हो गया है। मुझे तुम्हारी सहेली और उसके परिवार वालों के प्रति पूर्ण सहानुभूति है।”

प्रिया ने कृतज्ञ नेत्रों से मेरी तरफ देखा और चाय बनाने चली गई। मैं पिताजी से बातें करता रहा। इस बार जब मैं घर से वापस जाने लगा तो प्रिया ने अत्यंत भावुक होकर कहा था—“अब तो बहुत दिन हो गए देवेश तुमको हम सभी से अलग और दूर रहते, अब तुम्हारा दूर रहना मुझे बहुत खलता है। बच्चे भी तुमको बार-बार याद करके पूछते रहते हैं। अब यहाँ स्थानांतरण करवा लो न देवेश।” प्रिया ने अत्यंत आग्रहपूर्ण अनुरोध किया।

पत्नी की बात से मेरा मन भी कुछ विचलित हुआ। एक बार इच्छा हुई कि सब छोड़-छाड़ कर अपने घर आकर अपने लोगों के बीच रहूँ। अतः प्रिया का हाथ अपने हाथों में लेकर मैंने प्यार से कहा, “तुम ठीक कह रही हो प्रिया। मैं भी तुम सबको बहुत याद करता हूँ। मिन्टू और रानू की भी बड़ी याद आती है। माता-पिता जी भी पहले से टूट चले हैं। मेरे साथ की ज़रूरत उन्हें भी हैं। सबसे बड़ी बात तो यह है कि बहन की शादी करनी है। देखो जल्दी ही कोशिश करके यहाँ आने का प्रयास करूँगा। तुम परेशान न हो।” मैंने यह सोचकर प्रिया को ढाढ़स बँधाने के साथ विश्वास भी दिलाया कि—मेरे पास काफ़ी पैसे हैं। घर का खर्च बखूबी चल सकता है—कह दूँगा नौकरी छोड़ आया। प्रिया को मेरी बात से बड़ी तसल्ली मिली। मेरे साथ रहने के सुखद दिनों की प्रतीक्षा और आशा में उसने व परिवार के सभी सदस्यों ने मुझे विदा किया। पर माता-पिता, पत्नी-बेटों और बहन की तरफ से यह मेरी अंतिम भेंट थी। यह मैं बाद में जान सका।

अपना एक फोन नंबर मैंने घर पर दे दिया था ताकि यदि कोई आवश्यक सूचना देना हो तो उसी नंबर पर दे दिया करें, मुझे मैसेज मिल

जाएगा। पकड़े जाने के खतरे से बचने के लिए मैंने मोबाइल नहीं रखा था। मेरे जाने के पंद्रह-बीस दिन बाद ही घर पर चाचा के यहाँ से सूचना आयी कि उनकी बेटी रत्ना की शादी तय हो गई है। शादी फलां तारीख को है। सबका पहुँचना बहुत ज़रूरी था।

मेरे पिताजी ने मेरे दिए फोन नंबर पर सूचना दे दी। बाद में मैंने स्वयं बात करके पिताजी व प्रिया से कहा कि वे लोग ट्रेन का रिजर्वेशन करा लें—मैं सीधा चाचा के यहाँ पहुँचूँगा।

आरक्षण हो जाने पर पिताजी ने पुनः मुझे फोन करके तारीख, ट्रेन व कोच आदि की जानकारी दी। उन्होंने यह भी कहा कि यदि वह भी साथ चलता तो अच्छा था। अब किसी मज़बूत सहारे के बिना सफ़र में तबियत घबराती है। पर मैंने उनके साथ चलने में असमर्थता प्रकट की लेकिन इतना ढाढ़स उन्हें अवश्य दिया कि मैं लखनऊ उनके पहले पहुँच जाऊँगा और स्टेशन पर उन लोगों को लेने आऊँगा। पिताजी ने मेरी बात से संतोष कर लिया।

पर वह शुभ समय नहीं आया कि स्टेशन पर मैं अपने परिवार के सदस्यों को रिसीव करता। ट्रेन के स्टेशन पर पहुँचने से पूर्व ही सूचना आयी कि फलां स्टेशन पर अपराधियों के एक गिरोह ने ट्रेन की चार बोगियों में जमकर लूटपाट मचायी और अनगिनत व्यक्तियों को मौत के घाट उतार दिया।

मेरा माथा ठनका। मैं तुरंत टैक्सी करके उस स्थान पर पहुँचा जहाँ ट्रेन रोक दी गई थी। घबराया हुआ मैं अपने माता-पिता वाले कोच में घुसा। अंदर का दर्दनाक, हृदय-विदारक दृश्य देखकर मेरे होश उड़ गए। अन्य यात्रियों के साथ मेरा पूरा परिवार क्षत-विक्षत रक्त से सना बर्थ और कंपार्टमेंट की फर्श पर मृत पड़ा था। हत्यारों ने किसी को भी जीवित नहीं छोड़ा था। उफ़ यह क्या हो गया। मेरी आँखों के आगे अँधेरा छा गया।

पंद्रह-बीस वर्षों से यही सब करता आया था और अब तक पूरी तरह निर्दय और पाषण हृदय बन चुका था किंतु जब मैंने अपने प्रियजनों की यह हालत देखी तो मेरी आँखों से खून के आँसू टपक पड़े। मैंने कितने परिवारों को उजाड़ा, अनगिनत परिवारों से उनके प्रिय सदस्यों को निर्दयता

पूर्वक सर्वदा के लिए जुदा करते समय मुझे लेशमात्र भी पीड़ा नहीं हुई। पर आज जब मेरा पूरा परिवार उसी तरह आतंक, लूट और हत्या का शिकार हो चुका है, तब मुझे उन लुटे-पिटे परिवारों के कष्ट का बोध होने में क्षण भर का भी समय नहीं लगा।

परिवार के खोने की पीड़ा से अधिक पश्चाताप की पीड़ा थी। काश मैं अपने पिताजी की बात मानकर यह जघन्य पाप वाला कर्म छोड़ देता तो शायद इतनी बड़ी सजा मुझे न मिलती। कम से कम परिवार की सुरक्षा के लिए तो मैं उनके साथ रहता। पिताजी ने कितना बुलाया था। अकेले परिवार का भार ढोते-ढोते वे थक गए थे। प्रिया मेरे साथ रहने की आकांक्षा लिए लिए ही दुनिया से विदा हो गई। बहन और उसके मासूम बच्चों का भी क्या कसूर था? मेरा तो सब कुछ समाप्त हो चुका था। अब कुछ करने को शेष ही कहाँ था?

पीड़ा और पश्चाताप की अग्नि में जलते हुए मैंने मानव-सेवा को अपना धर्म और कर्म बनाया। लूटपाट से मिले लाखों रुपये और उसके ब्याज से अब मैं प्रियजनों की पुण्यतिथि के दिन अनाथ आश्रम, विकलांग आश्रम तथा गरीब, कोढ़ी, अपाहिज लोगों को भोजन, वस्त्र और कंबल बाँटता हूँ। मंदिरों और तीर्थ स्थलों पर भंडारा का नियमित रूप से आयोजन करता हूँ। अस्पतालों में ज़रूरतमंदों को मुफ्त दवा का वितरण भी अपने हाथों से करता हूँ। बस यही मेरा जीवन और दिनचर्या बन गई है।

देवेश के अतीत की दुखद गाथा सुनकर गौतम को दुख और सहानुभूति दोनों हुई। उसे ढाढ़स बँधाते हुए गौतम ने कहा—“मित्र, अब जो निश्चय करके तुमने निर्णय लिया है वह उत्तम है। तुम भूल जाओ कि तुमने कुछ बुरा किया था और तुम्हारे साथ बुरा हुआ। तुम्हारा प्रायश्चित्त रूपी यह प्रयास और कर्म उन पापों को धो देगा जिसके कारण तुम पश्चाताप की अग्नि में जल रहे हो।”

अश्रुपूर्ण नेत्रों से देवेश ने मित्र की तरफ देखकर कहा—“मैं भी कितना पाषाण और निर्दय बन गया था गौतम। इतनी लूटपाट और हत्याएँ मैंने कीं लेकिन मन-मस्तिष्क में दर्द की रंच मात्र अनुभूति भी नहीं हुई। आज जब अपने परिवार के प्रिय लोगों का विछोह पीड़ा दे रहा है तब मुझे परपीड़ा

का बोध हुआ। गौतम, एक बात मुझे शूल की तरह चुभती रहती है कि बुरे कर्म मैंने किए और सजा मेरे परिवार को मिली।”

“नहीं देवेश तुम गलत कह रहे हो। उन्हें कहाँ सजा मिली? वह लोग तो क्षण दो क्षण का कष्ट झेलकर चिरनिद्रा में सो गए। सजा तो तुम्हें ही मिली है। जिसके कारण तुम आज भी पीड़ा और प्रायश्चित्त की आग में जल रहे हो। अपने इस धर्मपूर्ण सुपथ से अब कभी विचलित मत होना। यही मेरा अनुरोध है। मैं फिर आऊँगा देवेश।”

कहकर गौतम जाने को उठ खड़ा हुआ।

लौटकर आया रक्षाबंधन

क्लीनिक बंद करके दीपक ने अभी घर में कदम रखा ही था कि माँ दुर्गावती ने कहा—“परसों रक्षाबंधन है। श्रुति को लेने नहीं जाएगा क्या?” “मुझे याद है माँ। पर पहले खाना दो, बड़ी जोर की भूख लगी है। खाना खा लूँ फिर बात होगी।” वाश-बेसिन में हाथ धोते हुए दीपक ने कहा।

माँ ने खाना लगा दिया। इत्मीनान से भरपेट भोजन करने के बाद दीपक ने माँ से कहा—“माँ, सुबह साढ़े पाँच की ट्रेन से दीदी को लेने चला जाऊँगा। तुम परेशान मत होना।” कहता हुआ दीपक सीधा अपने कमरे की तरफ बढ़ गया। सोने के लिए, सुबह जल्दी जो उठना था। दिनभर सरकारी अस्पताल में तथा संध्या सात बजे से रात्रि दस बजे तक अपने निजी क्लीनिक में मरीज देखते-देखते दीपक थककर चूर हो जाता, जिस कारण लेटते ही वह निद्रा की गोद में समा जाता।

पर दुर्गावती को देर रात तक नींद न आती। रात्रि का एकांत पाते ही अतीत अपना जाल फैला देता और दुर्गावती उसमें उलझी रहती। सुख-दुख और पीड़ा युक्त ताने-बाने से बुना जाल। भाग्य का चक्र कब किसे किस मुकाम पर पहुँचा दे कोई नहीं जानता। धीरे-धीरे दुर्गावती उसी अतीत के जाल में उलझती चली गई।

छोटा सा हँसता-मुस्कराता परिवार—पति श्रवण कुमार डॉक्टर, दो वर्षीया बेटी श्रुति और एक वर्ष का नन्हा-सा बेटा दीपक। दीपक और श्रुति के नाम में जानबूझकर पति-पत्नी ने अपने-अपने नामों का एक-एक अक्षर डाल दिया था। श्रवण ने कहा—‘बिटिया मेरी है इसका नाम श्रुति रखते हैं।’ बेटा तुम्हारा, दीपक नाम रख लो। पर किसकी बेटी और किसका बेटा? आनन-फानन में हँसते-मुस्कराते परिवार को दुर्भाग्य के अंधड़ ने तितर-

बितर कर अपनी मनहूसियत के घेरे में लपेट लिया। एक सड़क दुर्घटना में अपने परिवार को बेसहारा कर श्रवण असमय ही कालकवलित हो गए। दुर्गावती पर ऐसा वज्रपात हुआ कि वह रिस-रिस कर जीवित रहने को विवश हो गई। अभी कुल छह-सात महीने ही बीते थे। इस हादसे को कि तीव्र मस्तिष्क ज्वर में दुर्गावती का नन्हा दीपक भी बुझ गया। दुर्गावती के नेत्रों के समक्ष घनघोर अँधेरा छा गया। वह ठगी किंकर्तव्यविमूढ़ सी होकर रह गई। ईश्वर की इच्छा के आगे सर्वथा विवश।

समय न कभी रुका है न कभी रुक सकेगा चाहे कहीं खुशियों की शहनाइयाँ बजती हों अथवा गम के स्याह बादल छाए रहें। दुर्गावती का भी समय बीतता रहा। उसके टूटे मन और तन ने साहस और धैर्य का दामन पकड़ा। जो कुछ भी उसे आर्थिक सहायता प्राप्त थी उसके साथ ही उसने सिलाई-बुनाई करके जीवन-यापन का उपक्रम किया। उसके नीरस और उदास जीवन में बारी-बारी से आते छोटे-बड़े पर्व चुपचाप मायूसी से निकल जाते। पर रक्षाबंधन तो घाव को और ताजा कर देता जब श्रुति हाथ में राखी पकड़े रो-रोकर कहती—‘मेरे भैया को बुला दो मम्मी, मैं राखी बाँधूंगी।’ दुर्गावती तड़प उठती। हृदय पर पत्थर रख कर बेटी को धीरज बँधाती—“भैया आएगा बेटे, दवा कराने गया है।”

अगले रक्षाबंधन पर पड़ोस के बारह वर्षीय राहुल ने श्रुति को रोते देखकर पूछा—“क्या बात है श्रुति? क्यों रो रही है?” “किसको राखी बाँधू? मेरा भैया तो दवा कराने गया है।” हाथ में ली राखी की तरफ देखती सिसकती हुई श्रुति ने कहा।

राहुल जानता था कि दीपक कहाँ गया है। अतः सहानुभूति प्रकट करते हुए बोला—“तू रो मत श्रुति, देख मेरी भी तो बहन नहीं है। तू मुझे अपना भाई समझ ले और चल मुझे राखी बाँध दे। मुझे भी बहन मिल जाएगी।”

नन्ही श्रुति प्रसन्न हो उठी। राहुल ने अंदर जाकर राखी बँधवाई। श्रुति ने एक मिठाई उसे खिलायी तो राहुल ने जेब में जतन से रखा एक रुपया निकालकर श्रुति को देते हुए कहा—“जब नौकरी करने लगूँगा तो तुमको अच्छी-अच्छी चीज़े उपहार में दूँगा।” श्रुति मगन हो गई और उसे चाहिए भी क्या था?

जब राहुल अपने घर पहुँचा उसकी माँ ने उसकी कलाई में राखी बाँधी देखी तो शंकित मन से तेज़ आवाज़ में पूछा—“तुमने राखी किससे बाँधवायी? श्रुति से? उस मनहूस लड़की ने तुमको राखी बाँधी?”

“मनहूस? यह क्या होता है माँ?” राहुल ने भोलेपन से पूछा।

अब वह उससे क्या बताए कि एक साल के अंदर जिस लड़की का बाप और भाई खत्म हो गया हो वह मनहूस नहीं तो क्या है... सोचती हुई राहुल की माँ ने उसे डाँटा—“खबरदार जो अब कभी भी श्रुति के यहाँ तुमने पाँव भी रखा।” माँ की चेतावनी से भयभीत राहुल ने श्रुति के यहाँ जाना बंद कर दिया।

इस घटना की जानकारी दुर्गावती को हो गई। उसको यह जानकर गहरी पीड़ा पहुँची कि पूरा पड़ोस उसे मनहूस समझ रहा है। पर उसके पास इसका उपचार ही क्या था? भगवान जिस स्थिति में रखेंगे इनसान वैसे ही रहने को विवश है। दुर्गावती अपनी पीड़ा को होठों की सर्द आहों के बीच रखकर चुपचाप बेटी के साथ समय काटती रही।

दुर्गावती के इस दूभर और खोखले जीवन की एकमात्र अवलंब और आकर्षण बिंदु थी बेटी श्रुति। पर वह भी अपनी जिद पर अड़ी थी। रक्षाबंधन के लिए उसे भाई चाहिए था। एकदम दीपक जैसा भइया। दुर्गावती ने सोचा हमारे सुंदर सलोन दीपक को तो ईश्वर ने हमसे छीन लिया। इस जीवन में और इस शरीर से तो अब बेटी की भाई की आकांक्षा पूर्ण होना संभव नहीं है। फिर वह क्या करे? अजीब ऊहापोह में पड़ी दुर्गावती का मन समुद्र मंथन सा मथता रहा। हठात उसे एक सुंदर समाधान सूझ गया और वह एक सुदृढ़ निर्णय लेने को तत्पर हो गई। जिस कार्य के लिए ईश्वर ने उसे पूर्ण रूप से पंगु बना दिया है उसे वह अपने साहस और धैर्य से दूसरे रूप में प्राप्त करेगी।

शीघ्र ही दुर्गावती एक अनाथआश्रम से ढाई-तीन वर्ष का एक बच्चा ले आयी। जिसे उसने अपने दीपक का प्रतिरूप समझा। अपनी धर्म-माँ की स्नेह व ममत्व की छाँव में पलता हुआ वह दीपक उनके आँचल का सुंदर-सलोना पुष्प बन गया। श्रुति प्रसन्न हो उठी। नन्हीं सी जान ने उसे अपना नन्हा भैया दीपक ही समझा। खुश होकर वह माँ से बोली—“माँ हमारा भैया दवा कराके आ गया, अब उसे ही राखी बाँधूँगी।”

माँ का दिल भर आता। आँखों से बहते अश्रु पोंछकर वह बेटी की बात को स्वीकार कर लेती। इस बच्चे का नाम भी दुर्गावती ने दीपक रखकर उसे कुलदीपक के रूप में रोशन करना चाहा। घाव पर समय रूपी मलहम लगते-लगते अन्य पर्व तो धीरे-धीरे ही लौट सके पर रक्षाबंधन दीपक के घर में आने के साथ ही लौट आया। श्रुति अब पुनः प्रत्येक रक्षाबंधन पर अपना समस्त स्नेह उड़ेलकर भाई को टीका करती, राखी बाँधती और दीपक के मुँह में मिठाई ठूँसकर खिलखिला पड़ती। दुर्गावती देखती रहती। उसे अच्छा भी लगता फिर भी एक लंबी साँस लेकर सोचती भगवान जितना दे उतने में ही संतोष करना पड़ता है।

पिता की तो अधिक याद नहीं थी श्रुति को, लेकिन भाई को पाकर वह बहुत खुश थी। वह तो यह भी नहीं जान सकी कि यह उसका भैया दीपक नहीं है, अनाथ आश्रम से लाया हुआ भाई है। दोनों साथ-साथ ही खेलते और पढ़ते। बड़ा स्नेह-प्यार था दोनों भाई-बहन में।

समय बीता दोनों बच्चे कुछ समझदार हुए। रक्षाबंधन पर राखी बाँधती श्रुति से दीपक ने कहा—“दीदी, जब तुम्हारी शादी हो जाएगी तब रक्षाबंधन के दिन मैं तुम्हें तुम्हारी ससुराल से जाकर ले आऊँगा।”

“अच्छा, तुम ससुराल में मुझसे राखी नहीं बाँधवा सकते क्या?” पूछा श्रुति ने।

“वो बात नहीं है दीदी। दरअसल मैं चाहता हूँ कि ये प्यारा पर्व हम हर वर्ष अपनी माँ के सामने ही मनाएँ।” श्रुति ने पलकें झपका कर भाई की बात को मान लिया। वह भी माँ की पीड़ा को काफी कुछ समझ चुकी थी।

समय बीतता रहा। तन-मन और उत्साह से दुर्गावती बच्चों के प्रति अपने कर्तव्य का निर्वाह करती रही। श्रुति ने जब एम.ए. कर लिया तो माँ-बेटे ने एक अच्छा लड़का देखकर उसका विवाह कर दिया। अब तक दीपक भी बी.एस.सी. में पहुँच चुका था। लेकिन बी.एस.सी. करते-करते ही उसका एम.बी.बी.एस. में चयन हो गया। पाँच-छह वर्षों में उसने डॉक्टरी की पढ़ाई पूरी कर ली। दुर्गावती अपने निर्णय और परिश्रम से संतुष्ट हुई। जैसी आकांक्षा थी, दीपक वैसा ही बन गया। अपनी कोख से उत्पन्न न सही धर्मपुत्र ही कुलदीपक बनकर रोशन हुआ।

दीपक अपनी माँ को सदैव आदर व सम्मान देता। बहन भी भाई के स्नेह से सराबोर रहती। पहले भी और शादी के बाद भी श्रुति को कभी भाई के स्नेह में कोई कमी नहीं हुई। जिस दिन से दीपक अपने पैरों पर खड़ा हुआ, उसे माँ को कठिन परिश्रम करने से रोकने में अपनी सौगंध दिलानी पड़ी।

दुर्गावती ने देखा, कभी जिन पड़ोसियों ने मनहूस की संज्ञा देकर उनकी उपेक्षा व तिरस्कार किया था आज वही दौड़-दौड़ कर दीपक के पास आते हैं। दवा लेते हैं और स्वस्थ होने पर दुआएँ देकर जाते हैं। सब समय का फेर है सोचा दुर्गावती ने।

टन...टन...टन...टन...दीवाल घड़ी की आवाज़ ने दुर्गावती को अतीत से समेट लिया। वह चौंक पड़ी...तमाम रात्रि अतीत में खोए-खोए ही बीत गई। पाँच बज गए थे। दीपक को श्रुति को लेने जाना है। उसे जगाना होगा। सोचती हुई दुर्गावती उठकर बैठ गई। दीपक के कमरे में आयी, लेकिन दीपक को जगाना नहीं पड़ा, वह पहले से ही उठकर बहन के यहाँ जाने के लिए बैग ठीक कर रहा था।

अपना-पराया

सुजाता ने अपने पति तुषार से विचार-विमर्श किया और पहले की गई वसीयत को बदलने के निर्णय को अंतिम रूप दे दिया। पूर्व वसीयत में अपनी चल-अचल संपत्ति के चार बराबर भाग करके—दो भाग छोटे बेटे सुयश के नाम, एक हिस्सा बड़े यश के नाम—शेष बचा चौथाई भाग पति-पत्नी ने अपने नाम रखा। लेकिन अपने न रहने के बाद वह भाग भी छोटे बेटे को देने का निर्देश था। स्पष्ट था कि वसीयत में अंकित चार हिस्सों में तीन का हकदार छोटा बेटा सुयश और एक ही भाग बड़े बेटे यश के नाम लिखा गया था। लेकिन अब जो नई वसीयत तैयार की गई उसमें दोनों बेटों को आधी-आधी संपत्ति का हकदार बनाया गया। वसीयत में परिवर्तन से पूर्व और परिवर्तन के बाद भी यश और सुयश दोनों में से किसी को भी इस वसीयत के बारे में कोई जानकारी नहीं दी गई। कागज़ तैयार करवाकर कर सुजाता ने उसे अपने लॉकर में डाल दिया।

रात्रि में भोजनोपरांत सुजाता लेटी तो आँखों में नींद का दूर तक नामोनिशान न था, उसने करवट बदलकर देखा—तुषार सो चुके थे। तुषार आई.पी.एस. अधिकारी थे और वह भी गवर्मेन्ट गर्ल्स कॉलेज में प्राध्यापिका थी। बच्चों की सही परवरिश के लिए उसने काफी पहले सरकारी नौकरी से अवकाश ले लिया था जबकि तुषार ने केवल दो वर्ष पूर्व ही पुलिस कमिशनर पद से अवकाश ग्रहण किया था। अत्यधिक व्यस्तता के बाद एकदम खाली हो जाने से बड़ी बोरियत सी लगने लगी। अतः पति-पत्नी ने क्लब आदि जाने का क्रम जारी रखा, जिससे काफी समय कट जाता।

बड़ा बेटा यश आई.आई.टी. के अध्ययन के पश्चात चेन्नई में सॉफ्टवेयर कंप्यूटर कंपनी में इंजीनियर है जबकि छोटा सुयश पिता के ही पद

चिह्नों पर चलता हुआ आई.पी.एस. अधिकारी बना। पिता के सरकारी नौकरी से अवकाश ग्रहण करने के बाद यश ने अनेकों बार माता-पिता से आग्रह किया कि वे उसके साथ रहें—लेकिन पति-पत्नी फिलहाल जाने का मन नहीं बना सके। सुजाता ने पति के पुलिस अधिकारी की नौकरी का मान-सम्मान और चमक-दमक को स्मरण करते हुए सोचा—जाना ही होगा तो सुयश के पास जाएगी। जहाँ उसे नौकर-चपरासी के सुख के साथ पुलिस अधिकारी के पद की गरिमा का रौनक देखने व स्वयं सम्मान पाने का सुख भी उपलब्ध हो सकेगा। लेकिन यह क्या? भाग्य ने भी कैसा पलटा खाय़ा? तीस-बत्तीस वर्ष पूर्व से लेकर कल तक के समय के उतार-चढ़ाव और दुख-सुख के धूप-छाँव में विचरण करने से सुजाता अपने को रोक न सकी।

कॉलेज में सुजाता और तुषार सहपाठी थे। दोनों एक-दूसरे को पसंद भी करते थे। जहाँ कुशाग्र बुद्धि तुषार आकर्षक व्यक्तित्व वाले थे वहीं सुजाता भी मेधावी होने के साथ-साथ सौंदर्य की साक्षात् प्रतिमा थी। एक-दूसरे की पसंद बनने के बाद तुषार ने निश्चित कर लिया था कि वह सुजाता से विवाह के लिए तभी प्रस्ताव रखेगा जब किसी अच्छी नौकरी में उसका चुनाव हो जाएगा। अतः दो ढाई वर्ष पश्चात जब उसका आई.पी.एस. में चयन हो गया, तभी उसने सुजाता के माता-पिता से अपनी इच्छा को प्रकट किया। इतना अच्छा रिश्ता किसे मंजूर न होता? सुजाता के माता-पिता ऐसा रिश्ता पाकर बड़े प्रसन्न और गर्वान्वित हुए। अत्यंत हर्ष और उत्साह एवं धूमधाम से दोनों की शादी संपन्न हो गई।

सुजाता और तुषार पूर्ण रूप से संतुष्ट और प्रसन्न थे। जहाँ तुषार के साथ घूमना सुजाता को अच्छा लगता वहीं सरकारी अधिकारी की शान-शौकत भी उसके मन को भाती। फिर भी तुषार के ड्यूटी पर जाने से वह दिनभर बहुत अकेलापन महसूस करती। इस कारण प्रयास करवाकर उसने गवर्मेन्ट गर्ल्स कॉलेज में अंग्रेज़ी की अध्यापिका की जगह प्राप्त कर ली जिस कारण उसका समय अच्छी तरह से कट जाता। तुषार का जिस जगह के लिए स्थानांतरण होता वह प्रयास करके सुजाता का स्थानांतरण भी वहीं करवा लेते।

धीरे-धीरे चार-पाँच वर्ष बीत गए। अभी तक सुजाता की गोद सूनी थी। उसे अपना आँगन बच्चे की किलकारियों के बिना सूना-सूना लगने लगा था—इस कारण वह कभी-कभी दुखी जो जाती थी। अपने मन की पीड़ा की तरफ तुषार का ध्यान खींचते हुए उसने कहा—“तुषार अब काफी दिन हो गए—हम अकेले के अकेले ही हैं...अब तक हमारे आँगन में बच्चे की किलकारियाँ नहीं गूँजी हैं, मेरा ख्याल है कि हम दोनों को डॉक्टर से चेकअप करा लेना चाहिए, ताकि यदि कोई कमी हो तो हम उसका इलाज करा सकें।” धाराप्रवाह सुजाता बोलती गई।

“ठीक है, तुम कहती हो तो मान लेता हूँ। लेकिन मुझे पूर्ण विश्वास है कि ऐसी कोई भी कमी हममें या तुममें नहीं निकलेगी। जब समय आएगा सब कुछ अपने आप ठीक हो जाएगा।” तुषार ने पत्नी को समझाया।

तुषार का कथन पूर्ण रूपेण सत्य निकला। मेडिकल चेकअप के बाद दोनों पति-पत्नी में कोई कमी नहीं निकली। अतः सब कुछ भगवान की इच्छा पर छोड़ दिया गया। फिर भी मातृत्व की कमी की पीड़ा सुजाता को हर समय अंदर ही अंदर सालती रहती। उसे दुखी देखकर तुषार ने पुनः समझाया, “सुजाता, यदि हम अनाथ आश्रम से कोई बच्चा गोद ले लें, वह भी तो अपना हो जाएगा।”

सुजाता ने तुषार के सुझाव का स्वागत तो किया लेकिन फिर भी दुखी होकर बोली—“तुषार अपने बच्चे की बात ही दूसरी है—मुझे तो बस अपने बच्चे की ही आकांक्षा है।”

“फिर तो हमें भगवान पर विश्वास रखकर समय की प्रतीक्षा करनी होगी। मुझे पूरा विश्वास है सुजाता कि वह शुभ समय हमारे भाग्य में अवश्य लिखा है।” तुषार ने पत्नी को धैर्य बँधाया। पति की सलाह मानकर सुजाता चुपचाप उस सुसमय की प्रतीक्षा करने लगी।

पर उसे अपनी कोख से जन्म देने की बारी तो बाद में आयी, उससे पूर्व ही ईश्वर ने उसे मातृत्व के सुख का अद्भुत तोहफ़ा प्रदान कर दिया। एक दिन संध्या समय जब वह कॉलेज से लौटी तो उसके दरवाज़े के पास अर्धमूर्छित सी एक गर्भवती महिला पड़ी थी। सुजाता ने उसे तुरंत अस्पताल पहुँचाया और स्वयं भी गई। डॉक्टरों के अथक प्रयास के बाद उस मूर्छित

महिला को मुश्किल से एक घंटे के लिए होश आ सका था और सिजेरियन बच्चा जनने के बाद वह चिरनिद्रा में सो गई। मृत्यु पूर्व होश में आने के बाद उसने सुजाता से अपना नाम यशोदा बताया था। संभवतः वह अपनी हालत जान चुकी थी। उसने गिड़गिड़ाकर सुजाता से अनुरोध किया कि वह उसके बच्चे को अपने पास रख ले। उसके पति का एक एक्सीडेंट में देहांत हो चुका है। उनके अतिरिक्त उसका इस दुनिया में कोई नहीं है। इसलिए बच्चे के लिए कभी कोई हकदार बनकर नहीं आएगा।

यद्यपि सुजाता इस तरह किसी भी बच्चे को स्वीकारने के पक्ष में कभी नहीं थी। लेकिन कुछ ही क्षणों में मौत की ग्रास बनने वाली यशोदा की बात वह टाल न सकी। उसने उसे वचन देने के साथ पूर्णरूप से आश्वस्त किया कि वह उसके बेटे को अपने बेटे की तरह ही रखेगी।

यशोदा के बच्चे का नाम उसने यश रख दिया। आरंभ के कुछ दिन तो इंसानियत के नाम पर यश की देखभाल आया करती रही। लेकिन फिर बाद में सुजाता ने उस नवजात मासूम बच्चे पर अपनी पूरी ममता ही उड़ेल दी। उसने उसे अपने बच्चे की तरह ही प्यार और ममता की छाँव दी। संयोग से तुषार का स्थानांतरण देहरादून के लिए हो गया। जहाँ पर सभी लोगों ने यश को उनका अपना बेटा ही समझा।

अभी यश तीन साढ़े तीन वर्ष का ही था कि सुजाता को लगा कि उसके पाँव भारी हैं। उसने तुरंत डॉक्टर से चेकअप कराया। उसका अनुमान सही था। रिपोर्ट अनुमान के अनुसार निकली। सुजाता-तुषार दोनों प्रसन्न थे।

यथा समय सुजाता ने भी एक पुत्र को जन्म दिया। इस वास्तविक मातृत्व की प्राप्ति के सुख से सुजाता भावविभोर थी। बाद में भी यश को उसने माँ के समतुल्य ही प्यार व स्नेह देने में कोई कमी नहीं की। ईश्वर की इच्छा समझकर 'यश' को प्राप्त कर भी वह काफी संतुष्ट थी। फिर भी यह नवीन अनुभव उसे अपार हर्ष से आत्मविभोर कर रहा था। मुद्दत से देखा स्वप्न अब वास्तविकता में परिवर्तित हो चुका था। उसने परम पिता परमेश्वर को अनेकों धन्यवाद दिए। सुजाता और तुषार ने अपने बेटे का नाम यश से ही मिलता-जुलता सुयश रखा।

समय बीतता रहा—दोनों बच्चों की परवरिश और देखभाल अच्छी तरह

से होती रही। एक दिन उन्हें साथ-साथ खेलते देखकर तुषार ने अत्यंत संतुष्ट भाव से कहा—“सुजाता, देखो इसे ही कहते हैं कि ईश्वर की इच्छा सर्वोपरि है। जहाँ हम एक संतान के लिए तरस रहे थे वहीं ईश्वर की कृपा से हमें दो-दो बेटे प्राप्त हो गए। हमारा आँगन बच्चों की किलकारियों से गूँज उठा है।” सुजाता ने भी संतुष्ट मन से तुषार की बात को स्वीकारा।

दुख-सुख के धूप-छाँव तले समय अपनी गति से बीतता रहा। यश और सुयश दोनों बड़े हो गए। यश का आई.आई.टी. के लिए चयन हो गया जबकि सुयश पिता के पदचिह्नों पर चलता हुआ आई.पी.एस. अधिकारी बना। इंजीनियरिंग का अध्ययन पूर्ण करने के बाद यश की चेन्नई में कंप्यूटर की सॉफ्टवेयर कंपनी में नियुक्ति हो गई। सुयश को भी पुलिस उप-अधीक्षक की पोस्ट पर लखनऊ मिला। माता-पिता ने सुंदर व सुशील लड़कियाँ देखकर दोनों बेटों का विवाह संपन्न कर दिया। दोनों अपनी-अपनी पत्नियों के साथ आनंदपूर्वक रह रहे थे। जब जिसे अवकाश मिलता वह माता-पिता के पास आ जाता। दोनों बेटों के नन्हें-नन्हें बच्चों के बीच सुजाता का मन खिल उठता। वह तो चाहती थी कि सब एक साथ रहें तो कितना अच्छा हो। लेकिन नौकरी के कारण भला यह कैसे संभव हो पाता? अतः उनके स्वेच्छा से कभी-कभी आ जाने से ही पति-पत्नी संतुष्ट थे।

एक दिन सुजाता के मन में आया—क्यों न अपनी चल और अचल संपत्ति दोनों बेटों के नाम वसीयत कर दूँ—जिंदगी का क्या भरोसा कब आँखें मुँद जाएँ? उसने तुषार से पूछा तो उन्होंने भी उसकी बात का समर्थन किया। लेकिन यहीं से खून का रिश्ता जोर पकड़ने लगा। यद्यपि सुजाता ने यश और सुयश दोनों को ममता की बराबर की छाँव दी थी। लेकिन वसीयत करते समय उसकी ममता में दरार पड़ने लगी। लेकिन सब कुछ देख समझकर भी आज वसीयत करने के समय मन पक्षपात पर क्यों उतर आया? अपने मन के इस प्रश्न का उत्तर सुजाता को बस यही मिला। कुछ भी हो सुयश अपना बेटा है। उसके रग-रग में उसका खून दौड़ रहा है। यश की उससे बराबरी नहीं की जा सकती। यह तो यश की किस्मत थी जो उसे हमारे दरवाजे तक ले आई। यही सब सोचते हुए उसने वसीयत

का अधिकांश अपने पुत्र सुयश के नाम कर दिया और तुषार को भी इस पर सहमत कर लिया।

सरकारी नौकरी से अवकाश ग्रहण किए उन्हें कई वर्ष व्यतीत हो गए थे। अब उन लोगों को अपना शरीर पहले की अपेक्षा कुछ कमजोर लगने लगा था। अधिक गर्मी या ठंडक को झेल सकना अब उनके बर्दाश्त से बाहर की बात हो गई थी। अतः जब साधारण ठंड से आगे बढ़कर शरद ऋतु ने शीत लहरी का रूख अपना लिया तब पति-पत्नी ने निश्चित किया। छोटे बेटे सुयश को बुलाकर उसके साथ उसी के पास चले जाएँ, क्योंकि इस भीषण ठंड में अकेले रहना स्वास्थ्य की दृष्टि से ठीक नहीं था। हालाँकि यश ने फोन से दो-तीन बार माता-पिता को साथ ले जाने की इच्छा व्यक्त की थी। यश की पत्नी प्रिया ने भी अत्यंत आग्रहपूर्वक सुजाता से फोन पर कहा—“माँ जी, उधर ठंड बहुत अधिक पड़ रही है। आप लोग यहीं आ जाइए। यहाँ नाम मात्र की ठंडक है। आप जिस दिन के लिए कहें यश आप लोगों को लेने आ जाएँगे।” लेकिन सुजाता ने उसे यह कहकर टाल दिया कि अभी हमारा कहीं भी जाने का विचार नहीं है। जब निकलने का विचार होगा तब सूचित करूँगी।

सुजाता ने सोचा जाना ही होगा तो सुयश के पास जाऊँगी। जहाँ नौकर चपरासी और हर तरह के आराम की पूरी सुविधा है। अतः तुषार से विचार-विमर्श कर उसने सुयश के पास ही जाने का निश्चय कर लिया। तुषार ने भी सोचा अब किसी बेटे के साथ रहने और उसके सहारे की उन लोगों को सख्त जरूरत है। यद्यपि सुजाता सुयश की पत्नी तनु के रूखे एवं स्वार्थी स्वभाव से भलीभाँति परिचित थी। फिर भी सुयश और उसकी नौकरी के ताम-झाम के कारण वह वहाँ जाने का विचार कर बैठी। इसी उद्देश्य से उसने सुयश को फोन किया लेकिन वह सरकारी काम के सिलसिले में दूर पर गया था। तनु ने कहा—“माँ जी, इनको तो जरा भी अवकाश नहीं है जो आप लोगों को लेने जाएँ। आप लोगों को आना हो तो स्वयं आ जाइए।” “अच्छा ठीक है बहू”, कहकर सुजाता ने रिसीवर रख दिया। मन को पीड़ा पहुँची।

उसके फोन करने के बाद भी सुयश का कोई फोन नहीं आया। संभवतः तनु ने सुयश से फोन का जिक्र ही नहीं किया हो। अतः सुजाता ने फिलहाल जाने का विचार स्थगित कर दिया। लेकिन ठंडक और शीतलहरी के प्रकोप को सुजाता नहीं झेल सकी और गंभीर रूप से अस्वस्थ हो गई।

तुषार ने एक बार फिर सुयश को सूचित किया—“बेटे तुम्हारी माँ की तबियत काफी बिगड़ गई हैं। तुम आ जाते तो हमें आने में सुविधा होती।” “ठीक है पापा, लेकिन काम अधिक होने के कारण मेरा आना संभव नहीं हो पाएगा। हाँ चपरासी भेज रहा हूँ आप लोग उसके साथ आ जाइए।” सुयश ने अपनी स्थिति स्पष्ट की।

बेटे की विवशता की बात सुनकर तुषार ने कहा—“ठीक है बेटे”, और बुझे मन से रिसीवर रख दिया।

तनु फोन पर हो रही पति और श्वसुर की बातें सुन रही थी। उसे लगा अब सिर पर आफत आने वाली है। उसे उन लोगों का यहाँ आना बिल्कुल पसंद नहीं था। वह भी तब जब सास बीमार है। काम, झंझट और बंधन सबका एक साथ धावा, नहीं उसे कुछ करना होगा। तनु ने सोचा।

अविलंब उसे समाधान भी सूझ गया। उसने तुरंत यश के यहाँ फोन मिलाया। उधर से प्रिया ने रिसीवर उठाया। तनु ने उसे सूचित किया कि माँ की तबियत ठीक नहीं चल रही है। सुयश स्वयं लेने जाते लेकिन उन्हें तो दम मारने की फुरसत नहीं है। क्या करूँ कुछ समझ में नहीं आता।

“तुम लोग परेशान न हों, हम दोनों जाकर माँ-पिताजी को साथ ले आते हैं, अब इस उम्र में उनका अकेले रहना ठीक भी नहीं है।” तनु के कुटिल चातुर्य से अनभिज्ञ प्रिया ने अपनी तरफ से समाधान प्रस्तुत किया।

“ठीक है, लेकिन आ जाने पर उनका हाल बता देना” कहने के साथ ही तनु ने रिसीवर रख दिया। मन में आया, बात बन गई चलो छुट्टी हुई।

थोड़ी-बहुत बात बदलकर तनु ने सुयश को भी समझा दिया। प्रिया भाभी का फोन आया था। वह लोग माँ-पिताजी को लेने जा रहे हैं। इसलिए अब किसी को उनको लेने के लिए भेजने की जरूरत नहीं है। “ठीक है” सुयश ने लापरवाही से कहा और अपनी फाइलों में व्यस्त हो गया। दरअसल उसे भी माता-पिता की अधिक फ्रिक कभी नहीं रही।

सुयश के चपरासी की जगह बड़े बेटे बहू यश और प्रिया को आया देखकर तुषार और सुजाता की समझ में नहीं आया कि जिन्हें सूचना नहीं दी गई थी वे कैसे आ गए। यश ने शिकायत करते हुए दुख के साथ कहा—“माँ, आपकी तबियत इतनी खराब है और आपने हमें सूचित भी नहीं किया। वह तो तनु ने फोन करके बता दिया, अन्यथा पता भी नहीं चल पाता।” सुजाता को कष्ट हुआ कि पास रहकर और कहने पर भी सुयश नहीं आया और इतनी दूर चेन्नई से यश और प्रिया आ गए। उसने बात को सँभालते हुए क्षीण आवाज में कहा, “बेटे, दरअसल वह पास था तो उससे कह दिया था। तुम दूर से परेशान होते इसलिए नहीं बताया।”

“लेकिन आगे से यह दूर करीब की बात बीच में नहीं आनी चाहिए।” यश ने अपनी नाराज़गी ज़ाहिर की। बहरहाल डॉक्टर से परामर्श करके व ज़रूरी दवाएँ आदि लेकर दो दिन बाद यश माता-पिता को साथ लेकर चेन्नई के लिए रवाना हो गया।

चेन्नई पहुँचकर यश ने माँ को वहाँ के कुशल और नामी डॉक्टर एस. शिवचंद्रम को दिखाया। पूरा चेकअप और जाँच के बाद हाईब्लड प्रेशर के साथ हिमोग्लोबिन कम होने की बात समाने आई। दोनों बीमारियों के लिए सुजाता को परहेज बरतने के साथ अच्छी से अच्छी दवाएँ दी गईं। लगभग एक डेढ़ माह में सुजाता स्वस्थ हो गई। जिस लगन, निष्ठा और अपनत्व से प्रिया ने माँ की सेवा की व यश ने पूरी जिम्मेदारी के साथ देखभाल की, दोनों पति-पत्नी संतुष्ट हाने के साथ-साथ गर्वान्वित भी हुए। सुजाता ने अत्यंत स्नेह से प्रिया से कहा—“बहू, तुम दोनों ने अत्यंत तन्मयता से मेरी सेवा करके मुझे स्वस्थ कर दिया है। हम तुम्हारी सेवा भाव से अभिभूत हो गए। देखो न सुयश तो...।”

प्रिया ने बीच ही में माँ को रोक दिया। वह समझ गई थी कि माँ आगे क्या बोलने वाली हैं। अतः उनकी बात काटकर बोली—“माँ जी, आप भी कैसी बातें कर रही हैं? हम नहीं करेंगे तो तीसरा कौन आकर करेगा?” प्रिया सुयश के प्रति माँ के मन की पीड़ा को समझ रही थी। क्योंकि वह माँ की अस्वस्थता का सुनकर भी उन्हें देखने नहीं आया था।

कुछ दिन अच्छी तरह व्यतीत हो गए। फाल्गुन की बयार मन को भा रही थी। सुजाता ने होली के बाद घर जाने का विचार बना लिया था। यद्यपि

प्रिया और यश मना कर रहे थे। स्वयं तुषार का भी मन जाने को कम था। पर सुजाता के मन की आकांक्षा का सम्मान कर वे भी जाने को तैयार थे।

इसी बीच सुजाता की तबियत फिर बिगड़ गई। दवा खाने में लापरवाही कर देने से अस्वस्थता ने फिर आ घेरा। यश ने पुनः चेकअप और ब्लड यूरिन आदि की जाँच कराई। इस बार तो गंभीर बात सामने आई, ब्लड प्रेशर हाई हो जाने के कारण दोनों किडनियों ने प्रभावित होकर काम करना बंद कर दिया था। सुजाता को डायलिसिस पर रखने की नौबत आ गई, तुषार बहुत घबरा गए। यह कैसी मुसीबत आ खड़ी हुई। उन्होंने डॉक्टर से विस्तार में बात की। डॉक्टर का कहना था कि यदि एक भी किडनी मिल जाए तो परहेज और सावधानियों के साथ जीवन सामान्य रूप से जिया जा सकता है।

अब समस्या थी किडनी कहाँ से मिले! अस्पताल के स्टोर में किडनी उपलब्ध नहीं थी। कई डॉक्टरों के यहाँ भी पता किया। लेकिन किसी भी कीमत पर किडनी प्राप्त नहीं हो सकी। स्तरीय पेपर व दूरदर्शन पर भी भरपूर कीमत के साथ किडनी की प्राप्ति के लिए विज्ञापन दिया गया। लेकिन कहीं से बात बनने की आशा नहीं दिखी। तब यश ने डॉक्टर से अपनी एक किडनी देने की इच्छा व्यक्त की। डॉक्टर ने उसका पूर्ण चेकअप किया। स्वस्थ और आयु की दृष्टि से वह पूर्ण रूपेण उपयुक्त थे। लेकिन दुर्भाग्य से उनका ब्लड ग्रुप मेल न खाने के कारण बात नहीं बन पाई, तुषार को पहले ही अनुमान लग गया था कि यश का ब्लड सुजाता से मिलने की उम्मीद कम है। वह उनका अपना बेटा भी तो नहीं था। प्रिया ने देखा कि पति का प्रयास निष्फल सिद्ध हुआ तब उसने डॉक्टर से अपनी एक किडनी माँ को प्रत्यारोपित करने की इच्छा व्यक्त की। डॉक्टर ने उसे उसका भी ब्लड टेस्ट किया, जो सुजाता के ब्लड ग्रुप से मेल खाता निकला। अन्य टेस्ट व प्रिया के स्वास्थ्य का पूर्ण परीक्षण कर डॉक्टर ने पाया कि उसकी किडनी सुजाता को प्रत्यारोपित की जा सकती है।

प्रिया के चेकअप से पूर्व तुषार ने सुयश को भी माँ की हालत की जानकारी दे दी और यह भी सचेत कर दिया कि वह अविलंब अपने ब्लड ग्रुप की जाँच करा ले।

श्वसुर की बात सुनकर तनु ने सुयश को स्पष्ट शब्दों में मना करते हुए कहा—“अब बूढ़ी माँ के लिए तुम अपनी किडनी देकर अपना जीवन जोखिम में डालोगे? नहीं मैं ऐसा नहीं होने दूँगी।”

“ठीक है तुम कहती हो तो—जब माँ का सब प्रबंध हो जाएगा तभी मैं उन्हें देखने जाऊँगा।” बिलकुल सहज भाव से सुयश ने कहा।

वहाँ प्रिया की एक किडनी सुजाता को प्रत्यारोपित कर दी गई। डॉक्टर ने जितनी और जो-जो सावधानियाँ, परहेज व एहतियात दोनों के लिए बताए उस पर पूरी तरह से अमल किया जाता, आपरेशन वाले दिन सुयश और तनु भी लखनऊ से आ गए थे। प्रिया के जोखिम पूर्ण त्याग से तुषार अभिभूत हो गए। कुछ समय बाद दोनों घर आ गईं। धीरे-धीरे सब कुछ नार्मल होता गया।

स्वस्थ होती सुजाता को हर क्षण स्मरण रहता कि प्रिया ने उसके लिए कितना बड़ा त्याग किया है। यश के भी सेवाभाव से प्रभावित होकर सुजाता का मन गर्वान्वित हुआ। यश को अपने बेटे के रूप में पाकर आज वह अपने को अधिक धन्य समझने लगी। अपना-पराया से संबंधित जो परिभाषा सुजाता के मन में बनी थी अब वह बदल गई। अपना वह है जो अपनों-सा व्यवहार करे नहीं तो अपना भी पराया है।

तुषार और सुजाता ने आपस में बातचीत करके निश्चित किया कि वह अपनी पूर्व वसीयत में परिवर्तन कर दोनों बेटों को बराबर का भागीदार बना दें। यद्यपि वे इस बात को अच्छी तरह जानते थे कि वसीयत में परिवर्तन करके भी प्रिया के त्याग का मूल्य नहीं चुकाया जा सकता।

आजन्म ऋणी

देर रात गए कुँवर बहादुर सोने का प्रयास करते रहे लेकिन सो नहीं सके। नींद आँखों से कोसों दूर चली गई थी। बार-बार मन-मस्तिष्क में पीढ़ियों से चली आ रही दो खानदानों की दुश्मनी की बात उभरकर आ रही थी। ठाकुर अजीत सिंह और उनका खानदान। हर तरह से शिक्षित और समझदार होने के बावजूद भी दोनों में से किसी ने भी इस अर्थहीन दुश्मनी का पटाक्षेप करने का प्रयास नहीं किया। लेकिन कल तो ठाकुर अजीत सिंह ने वह कर दिखाया जिससे वह उनके आजन्म ऋणी हो गए, पता नहीं उनके इस ऋण से वह कभी उऋण हो सकेंगे अथवा नहीं। सोचते हुए कुँवर बहादुर अपने बाप-दादा के समय की छोटी-सी घटना से लेकर कल तक की घटना का विश्लेषण करने से अपने को रोक न सके।

आज की तरह उन दिनों भी कुँवर बहादुर के दादा कुँवर जय सिंह तथा ठाकुर अजीत सिंह के दादा अभय सिंह एक ही कस्बे के निवासी थे। दोनों बहुत अच्छे दोस्त तो नहीं थे लेकिन उनमें आपस में कोई दुश्मनी भी नहीं थी। पर एक छोटी सी घटना ने दुश्मनी का ऐसा रिश्ता जोड़ दिया जो आगे दो-तीन पीढ़ियों तक चलता रहा। बात छोटी-सी थी। जय सिंह के खेत पर काम कर रहे आदमियों ने आकर सूचित किया कि ठाकुर अभय सिंह के आदमियों ने हमारा पंद्रह-बीस फुट खेत अपने खेत में मिला लिया है। उनका कहना है कि वह उनके खेत का हिस्सा है।

सुनकर जय सिंह बिगड़ गए—“हमारे खेत की इंच भर ज़मीन भी कोई नहीं ले सकता। उनसे कह दो चुपचाप हट जाएँ वरना अंजाम ठीक नहीं होगा।” लेकिन ठाकुर के आदमी नहीं माने और बात बढ़कर खून-खराबे

तक पहुँच गई। पुलिस के हस्तक्षेप से मामला ठंडा पड़ा, लेकिन दोनों परिवारों के आपसी संबंधों में जो गाँठ पड़ गई वह तीन पुश्तों तक पड़ी रही।

आज स्वयं कुँवर बहादुर और ठाकुर अजीत सिंह दोनों ही अच्छे पढ़े-लिखे व्यक्ति हैं। चाहते तो उनकी पुश्तैनी दुश्मनी समाप्त हो जाती लेकिन पहल कौन करे। बात यहीं रुक जाती और स्थिति पूर्णतः ही बनी रहती।

कुँवर बहादुर को औलाद के नाम पर एकमात्र बेटी श्यामला थी जो शहर के डिग्री कॉलेज के हॉस्टल में रह कर बी.ए. कर रही थी। ठाकुर अजीत सिंह के दो पुत्र थे, जिनको इंजीनियरिंग का अध्ययन पूर्ण करने के साथ ही स्तरीय कंपनी में नौकरी मिली और दोनों यू.एस.ए. चले गए।

अपनी बेटी श्यामला का एम.ए. पूर्ण होने पर कुँवर बहादुर को उसके विवाह की चिंता हुई। अपनी पत्नी देवयानी से वह बोले—“सोचता हूँ जल्दी ही श्यामला के हाथ पीले कर दूँ तो मन निश्चित हो जाएगा। उसकी शिक्षा तो लगभग पूर्ण हो चुकी है।”

देवयानी ने पति की बात का समर्थन किया—“आपका कथन उचित है, लेकिन आज समय बहुत बदल गया है। हमें श्यामला से उसकी पसंद जाननी होगी।”

“ठीक कहा, मुझे तो इस बात का ध्यान ही नहीं था। उसकी पसंद पूछकर देखो, फिर आगे बात होगी।” कुँवर बहादुर ने बिलकुल सहज भाव से कहा।

लेकिन जब देवयानी ने बेटी से विवाह के लिए उसकी पसंद पूछा तो श्यामला ने स्पष्ट शब्दों में कहा—“माँ, मुझे अभी विवाह नहीं करना है। मैं कुछ बनना चाहती हूँ—अपना कैरियर बनाना चाहती हूँ।”

“लेकिन हमारे पास किस चीज़ की कमी है जो तुमको कैरियर बनाने की ज़रूरत है।” देवयानी ने उसकी बात का विरोध किया। “कुछ भी हो माँ, मुझे अभी विवाह नहीं करना है।” श्यामला ने साफ़ मना कर दिया।

दरअसल श्यामला की पसंद उसकी कॉलेज में आए नए प्रोफेसर परवेज़ हसन बन गए थे। परवेज़ भी उसे पसंद करते। उन्होंने आपस में विवाह

करने का निश्चय भी कर लिया। यह भी सोच लिया था कि यदि दोनों के परिवार वालों ने कुछ आपत्ति की तो वे दोनों सीधे कोर्ट मैरिज कर लेंगे। श्यामला भली-भाँति जानती थी कि इस अंतर्जातीय विवाह के लिए, उसके माता-पिता कभी तैयार नहीं होंगे। उसे जो कुछ करना होगा चुपचाप ही करना होगा।

उधर कुछ दिनों पश्चात कुँवर बहादुर बेटी के लिए पुनः वर तलाशने में लग गए। ईश्वर की कृपा से उन्हें अधिक परेशान नहीं होना पड़ा। शीघ्र ही एक अत्यंत संप्रात परिवार में श्यामला का रिश्ता तय हो गया। बड़े भाई डॉक्टर तथा छोटे भाई अर्थात् श्यामला के होने वाले पति आशीष आई.ए.एस.। कुँवर बहादुर और देवयानी इस रिश्ते से बहुत खुश थे। अपनी बेटी के भाग्य पर उन्हें गर्व हो रहा था।

शुभ लगन में सगाई की रस्म अत्यंत धूमधाम से संपन्न हो गई। कम से कम डेढ़ हजार लोग इस शुभ अवसर पर उपस्थित थे। कुँवर बहादुर चाहते हुए भी ठाकुर अजीत सिंह के परिवार को आमंत्रित नहीं कर सके। अतः स्थिति जहाँ की तहाँ बनी रह गई।

श्यामला ने अत्यंत बुझे मन से सगाई की रस्म पूरी की। समारोह में सम्मिलित होने के लिए आए अतिथियों ने गरिमामय पद के अधिकारी एवं आकर्षक व्यक्तित्व के आशीष की भूरि-भूरि प्रशंसा की। स्वयं श्यामला को भी आशीष अच्छे लगे, लेकिन परवेज़ के प्यार में डूबी वह आशीष की तरफ से उदासीन ही रही। विवाह की तिथि पंद्रह दिन बाद रखी गयी।

अपने कस्बे में विवाह का इतना बड़ा आयोजन हो रहा था लेकिन ठाकुर अजीत सिंह को उससे कोई सरोकार ही नहीं था। उन्हें किसी आवश्यक कार्य से दिल्ली जाना था। ट्रेन के ए.सी. टू टायर में उनका आरक्षण भी हो चुका था। अपने कंपार्टमेंट में प्रवेश करके ठाकुर अजीत सिंह ने अपनी अटैची व बैग यथास्थान रखा और आराम से सीट पर बैठ गए। सामने की बर्थ पर एक युवक और युवती बैठे थे। पहले तो उन्होंने युवा युगल पर ध्यान नहीं दिया। अचानक उनकी दृष्टि लड़की के चेहरे पर पड़ी तो वह चौंक गए। यह तो कुँवर बहादुर की बेटी श्यामला है। इसकी तो अगले

सप्ताह शादी है। लेकिन यह जा कहाँ रही है? साथ का युवक कौन है? उनके मन में अनेक प्रश्न घूमने लगे। संभवतः श्यामला भी उनको पहचान गई थी। इसलिए वह एक पत्रिका की आड़ लेकर, चेहरा दूसरी तरफ़ फेरकर बैठ गई।

अंततः अजीत सिंह से रहा नहीं गया तो उन्होंने युवक से पूछ ही लिया—“कहाँ जा रहे हो बेटे?” जवाब मिला—दिल्ली।

“बिजनेस के कार्य से मैं भी दिल्ली जा रहा हूँ। तुम यहाँ क्या करते हो बेटे? अपना नाम तो बताया ही नहीं।” ठाकुर अजीत सिंह उस युवक के बारे में जानना चाहते थे। “मुझे परवेज़ हसन कहते हैं। मैं यहाँ डिग्री कॉलेज में प्रोफेसर हूँ।” एक क्षण को विराम देकर परवेज़ ने पुनः श्यामला की तरफ़ इशारा करके कहा—“मेरे साथ मैं कॉलेज की एक स्टूडेंट हूँ। हमारी शादी तय हो चुकी है और हमारा घर भी दिल्ली में है। हम शादी के लिए ही दिल्ली जा रहे हैं।”

परवेज़ की बात सुनकर ठाकुर अजीत सिंह का माथा ठनका। वह श्यामला को पहचान तो पहले ही गए थे। तो क्या यह लड़की अपने परिवार और खानदान की प्रतिष्ठा को मटियामेट कर देगी? एक मुसलमान लड़के के साथ भागकर विवाह रचाने जा रही है और यहाँ कितने संभ्रांत और प्रतिष्ठित परिवार में इसकी शादी तय हुई है।

कुँवर बहादुर के परिवार से कोई बात-व्यवहार न रहने पर भी इस समय उनकी लड़की के उठाए कदम से उन्हें आश्चर्य और दुख की मिश्रित अनुभूति हुई। उन्होंने सोचा—आजकल इतना पढ़-लिख कर भी बच्चे कैसी नासमझी भरा कदम उठा लेते हैं। उन्होंने अनजान बनकर परवेज़ से पूछा—“मिस्टर परवेज़, क्या आप जानते हैं कि आप जिससे शादी करने जा रहे हैं वह किसकी बेटी है?” “जी अंकल जानता हूँ” बिलकुल बेझिझक परवेज़ ने कहा। वह अजीत सिंह को पहचानता नहीं था। “तो फिर तुम यह भी जानते होगे कि तुम झूठ बोल रहे हो। तुम्हारी शादी इसके साथ तय नहीं हुई है। अपितु तुम लोग अपनी मरजी से, भागकर विवाह रचाने जा रहे हो। तुम दोनों ऐसा क्यों कर रहे हो बेटे?” थोड़ा रुककर अजीत

सिंह ने नरम आवाज़ में पूछा—“क्या तुम्हें इस बात का अंदाज़ा नहीं है कि तुम्हारे इस कदम से लड़की के माता-पिता को कितना घातक सदमा पहुँचेगा, साथ ही समाज में उनकी बनी-बनाई प्रतिष्ठा भी धूल-धूसरित हो जाएगी।” अबोध गति से बोलते अजीत सिंह क्षणभर को रुके, फिर तुरंत ही स्पष्ट आवाज़ में बोले—“तुमको तो ज्ञात हो ही चुका होगा कि श्यामला की शादी एक अत्यंत संभ्रांत परिवार में तय हो चुकी है। यदि तुम इसकी और इसके परिवार की इज़्ज़त चाहते हो तो इसे अपने बंधन से मुक्त कर दो बेटे।”

ठाकुर अजीत सिंह का लंबा वक्तव्य सुनकर परवेज़ थोड़ा घबराया। उसने श्यामला की तरफ देखा। जैसे उसके मन की थाह चाह रहा है पर बोला कुछ नहीं।

श्यामला की समझ में भी नहीं आ रहा था कि वह क्या करे? अजीत अंकल की सभी बातें उसे उचित प्रतीत हुईं। फिर भी जहाँ एक तरफ़ परवेज़ उसका प्यार था वहीं दूसरी तरफ़ माता-पिता की समाज में प्रतिष्ठा का प्रश्न भी सामने था। अभी तक वह यह सब क्यों नहीं सोच सकी? इतना आगे कदम बढ़ाने से पहले उसके मन-मस्तिष्क में यह बात क्यों नहीं आई? अजीब ऊहापोह में पड़ गई श्यामला।

इधर ठाकुर अजीत सिंह अपने व कुँवर बहादुर के बीच की पुश्तैनी दुश्मनी को सर्वथा भूल गए। उन्हें ऐसा प्रतीत हुआ जैसे श्यामला केवल कुँवर बहादुर की ही बेटी नहीं है। वह उनकी भी बेटी हैं, पूरे कस्बे की बेटी है। उसका इस तरह से घर से भागकर शादी करना सबकी प्रतिष्ठा व सम्मान का प्रश्न है। यह सब सोचते हुए उन्होंने मन में दृढ़ता के साथ निश्चय किया, वह ऐसा अनर्थ नहीं होने देंगे, इसके लिए उन्हें जो कुछ भी करना होगा करेंगे।

मन में दृढ़ निश्चय के साथ ठाकुर अजीत सिंह ने पहला ठोस कदम उठाते हुए दिल्ली जाने का विचार तुरंत स्थगित कर दिया। उन्होंने परवेज़ हसन को समझाने के साथ ही श्यामला से भी अत्यंत स्नेहपूर्ण शब्दों में कहा—“बेटी, तुम सिर्फ़ कुँवर बहादुर की ही बेटी नहीं हो, अपितु मेरी

और पूरे कस्बे की बेटी भी हो। तुम्हारा विवाह कितने संध्रांत और प्रतिष्ठित परिवार में तय हुआ है। लेकिन यह सब शायद तुम अपने प्यार के आवेग में भूल ही गई हो बेटी। आज तुम्हारे हाथ में अपने परिवार-खानदान के साथ पूरे कस्बे की इज्जत भी है। इसे बचा लो बेटी मैं तुम्हारा बहुत-बहुत आभारी रहूँगा।” अबाधगति से बोलते ठाकुर अजीत सिंह की आवाज़ भारी गई थी।

अजीत सिंह की बातों ने श्यामला के मर्म को छू लिया। आज उसे पहली बार ऐसा प्रतीत हुआ जैसे वह सचमुच बड़ी भारी गलती कर रही थी। प्रेम के नशे में उसे इस बात का अंदाज़ा ही नहीं लग सका। लेकिन इस समय हठात ठाकुर अंकल की बात ने जैसे उसकी आँखें खोल दी हों। उसने सोचा—ठाकुर अंकल ने मुद्दत से चली आ रही खानदानी दुश्मनी को नज़रअंदाज कर उसके पिताजी की प्रतिष्ठा की रक्षा करना कर्तव्य समझा। उनके इस त्यागपूर्ण महान विचार को सम्मान देती श्यामला ने झुककर उनका चरण-स्पर्श किया और एक विवश दृष्टि प्रोफ़ेसर परवेज़ हसन पर डाल कर ठाकुर अजीत सिंह के साथ हो ली।

अपने प्रयास में सफलता प्राप्त कर अजीत सिंह को हर्ष एवं संतोष की गहरी अनुभूति हुई। उन्होंने शीघ्र ही एक टैक्सी की और श्यामला के साथ सीधे कुँवर बहादुर के रोशनी से जगमगाते आलीशान बँगले पर पहुँच गए। संक्षेप में समस्त प्रकरण का वर्णन कर उन्होंने उनकी बेटी उनके सुपुर्द कर दी।

कुँवर बहादुर साश्चर्य विस्फारित नेत्रों से ठाकुर अजीत सिंह की तरफ देखते ही रह गए। उनकी समझ में कुछ नहीं आया। लेकिन जब उन्हें सारी बात समझ आई तो भाव-विह्वल से ठाकुर अजीत सिंह को बाहों में भर लिया, जिन्होंने आज आपसी दुश्मनी को नज़रअंदाज कर उनकी रास्ते से भटकी बेटी को सुपथ दिखला दिया था। जिस पहले नाम पर वह हमेशा कतरा जाते थे, वही पहल आज ठाकुर अजीत सिंह ने कितने नाजुक और ज़रूरत के समय पर की। कुँवर बहादुर का अंतर्मन ठाकुर अजीत सिंह के प्रति गर्व और सम्मान से परिपूर्ण हो गया। उनके प्रति आभार व्यक्त करने

के लिए उन्हें शब्द नहीं मिल पा रहे थे। अश्रुपूर्ण नेत्रों से कृतज्ञता व्यक्त करते हुए वह मात्र इतना ही कह सके—ठाकुर साहब, मेरे बड़े भाई—आज आपने मुझे अपना इतना बड़ा ऋणी बना दिया कि मैं कभी उऋण न हो सकूँगा।

ठाकुर अजीत सिंह ने कुँवर बहादुर के कंधे पर हाथ रखकर सहजभाव से कहा—“भाई कुँवर, मैंने तो केवल अपना कर्तव्य पूरा किया है, जिसके लिए सुबुद्धि देने वाला ईश्वर है। अतः ईश्वर के प्रति अनुग्रहीत रहो।”

दो सहेलियाँ

फ़ाइवस्टार होटल में आयोजित सुजाता के बेटे की शादी का समारोह लगभग समाप्त हो चुका था। उत्सव में आए अतिथि अब एक-एक करके वापस जा रहे थे। अंतिम शिफ्ट की लिफ्ट नीचे आई तो उसमें से बाहर निकलती सरिता की दृष्टि अचानक बगल से निकलती ममता पर पड़ गई। वह कुछ दुविधा में पड़ी, पर आँखों ने धोखा नहीं खाया। उसने अपनी सहेली ममता को पहचान लिया था। उसने धीमी सी आवाज़ दी 'ममता'। अपना नाम सुनकर ममता रुक गई। घूमकर देखा तो तुरंत सरिता पहचान में आ गई। फिर तो दोनों सहेलियाँ एक-दूसरे से लिपट गई। कैसा अप्रत्याशित मिलन था पूरे पच्चीस साल बाद। आज दोनों सहेलियाँ आयु की अर्ध-शतक रेखा पार करने की दहलीज़ पर थीं। सरिता ने अपने पति अभय से ममता और उसके परिवार का परिचय कराया। ममता के पति राजन और बेटा गीता को भी सरिता, अभय और उनके पुत्र कपिल से मिलकर अच्छा लगा। थोड़े ही समय में दोनों परिवार आपस में इस तरह घुल-मिल गए जैसे मुद्दत से एक-दूसरे को जानते हों। बहरहाल एक-दूसरे का फोन नंबर, निवास का पता आदि ले देकर उन्होंने एक-दूसरे से विदा ली।

इस अप्रत्याशित मुलाकात के बाद दोनों सहेलियों का अपने परिवार के साथ एक-दूसरे के यहाँ आना-जाना बराबर बना रहा। लेकिन दोनों की ही आकांक्षा थी कि वह अपनी सहेली से कुछ समय अकेले में मनचाही बातें करें। कॉलेज के बाद दोनों मुद्दत बाद इस उम्र में मिली थीं। अतः उनकी इच्छा थी कि वे अपने जीवन के बारे में विस्तार से पूछें व बताएँ। अतः ममता ने ही एक दिन पहल की और फोन से अपने आने की सूचना देकर यथासमय सहेली के यहाँ पहुँच गई।

दोनों सहेलियों की बातचीत का क्रम शुरू हुआ तो थमने का नाम ही नहीं ले रहा था। अपनी-अपनी शादी में एक-दूसरे को नहीं बुलाने की शिकायत दोनों ने की। उन्होंने हनीमून कहाँ मनाया? हनीमून कैसा रहा? उनके पतियों का स्थानांतरण कहाँ-कहाँ हुआ? आदि तमाम बातों की जानकारी एक-दूसरे को दी गई। सरिता ने कहा—“आज के समय के अनुसार हम दोनों को एक ही एक बच्चा है। यह विशेष महत्त्वपूर्ण बात है, अंतर मात्र इतना है कि मेरा बेटा है तुम्हारी बेटी।” थोड़ा रुककर सरिता ने पुनः कहा—“ममता, मुझे लड़की कभी पसंद नहीं रही।”

“लेकिन क्यों सरिता? लड़कियों में तुमको क्या कमी दिखी?” ममता ने साश्चर्य पूछा, “अब देखो न पूरा पढ़ाने-लिखाने के बाद भी हमें लड़की की शादी के लिए दरवाज़े-दरवाज़े भटकना पड़ता है। दूसरी बात, बेटे के पास हम जिस अधिकार के साथ रह सकते हैं, वह अधिकार बेटी के पास रहने...।”

सरिता की बात मध्य में ही रोककर ममता ने कहा—“तुम्हारी दोनों दलीलें (आक्षेप) उचित नहीं हैं सरिता। जहाँ तक मैं समझती हूँ हर लड़की अपना भाग्य साथ लेकर आती है। फिर बिना प्रयास के तो कोई काम नहीं होता। दूसरे मैं कदापि नहीं मानती कि किसी माँ-पिता का अपनी बेटी के पास रहना अधिकार के बाहर है। सच मानो तो ये दकियानूसी बातें हैं।” कुछ विराम देकर ममता ने आगे कहा—“सरिता, विश्वास करो, मुझे तो बेटी ही पसंद है। गीता के जन्म लेने के बाद मैंने पुत्र के लिए कोई चाह नहीं की। गीता ही मेरी बेटी और बेटा दोनों हैं।” ममता ने अपनी बेटी के प्रति स्नेह-ममत्व की भावना से भरकर कहा।

सरिता ने सहेली की बात को हलकेपन से लेकर कहा—“बेटा-बेटी पर मेरे विचार तुमसे सर्वथा भिन्न हैं ममता। पर इसमें हमें बहस करने की ज़रूरत नहीं है। सबकी अपनी-अपनी पसंद होती है। मुझे लड़कियाँ कभी अच्छी नहीं लगीं। वह चाहे अपनी हो या दूसरे की। कपिल के जन्म के दो वर्ष बाद जब मैं पुनः प्रेगनेंट हुई और अल्ट्रासाउंड से ज्ञात हुआ कि आने वाला मेहमान कन्या है तब मुझे भारी मानसिक उलझन हुई। मैंने हर हालत में उस उलझन से मुक्ति पाने का निश्चय किया और अभय के लाख

मना करने पर भी मैंने गर्भपात (डी.एंड सी.) करा लिया, तब जाकर मुझे चैन मिला।” धाराप्रवाह बोलती सरिता ने ममता की तरफ देखा जैसे अपनी बात पर उसकी क्या प्रतिक्रिया है जानना चाहा हो।

ममता को सहेली द्वारा भ्रूण-हत्या की बात अच्छी नहीं लगी। लेकिन इस पर उसने वाद-विवाद करना व्यर्थ समझा। अतः इस विषय को यहीं रोककर उसने सहज भाव से कहा—“छोड़ो, यह तो अपनी-अपनी पसंद और इच्छा पर निर्भर करता है। मैं तो समझती हूँ बेटा और बेटी दोनों ही अपनी-अपनी जगह ठीक हैं, जिसे जो पसंद हो।” कुछ देर और बातचीत के बाद ममता ने जाने की आज्ञा ली।

अगले तीन-चार वर्ष तक दोनों सहेलियाँ जयपुर ही रहीं। उनका एक-दूसरे के यहाँ आना-जाना और स्नेह व्यवहार यथावत बना रहा। इस बीच सरिता के बेटे कपिल की इंजीनियरिंग की पढ़ाई पूर्ण हो गई। उसकी नौकरी कैम्पस से ही टी.सी.सी. में लग चुकी थी। साथ में इंजीनियरिंग करती लड़की बिंदु से उसकी शादी भी संपन्न हो गई। लेकिन ममता और राजन के भाग्य ही खुल गए जब उनकी सुंदर सुशील बेटी गीता की शादी नवीन प्रकाश आई.ए.एस. से तय हो गई। अत्यंत धूमधाम और हर्ष उल्लास के वातावरण में शादी संपन्न भी हो गई। परिवार के सभी लोग हर्षित एवं गर्वान्वित थे।

बेटी के विवाहोपरांत एक दिन ममता ने अत्यंत सहज भाव से सरिता से कहा—“देख सरिता, मैं कह रही थी न कि लड़कियाँ अपना भाग्य लेकर आती हैं। अब देख न कितने प्रतिभावान व योग्य नवीन जी हमें मिले। गीता के भाग्य में तो तो चार चाँद लग गए।”

अपनी आँखों के समक्ष सब कुछ देख चुकी सरिता स्वीकृत भाव से स्नेहिल वाणी में बोली—“हाँ ममता, इस बात पर मैं तुमसे सहमत हूँ।” दोनों सहेलियाँ भाग्य के चमत्कार पर मुसकरा पड़ीं।

समय अपनी गति से बीतता रहा। लगभग चार-पाँच वर्ष एक ही स्थान पर साथ-साथ रहने के पश्चात अभय और राजन दोनों का स्थानांतरण अलग-अलग स्थानों पर हो गया। साथ छूटने से दोनों सहेलियों को कष्ट हुआ, लेकिन अब जाने के अतिरिक्त कोई चारा भी तो नहीं था। फिर लंबे समय तक उनका मिलन संभव नहीं हो सका। अभय और राजन ने नौकरी से अवकाश ग्रहण कर लिया।

लगभग सात-आठ वर्ष का लंबा समय पंख लगाकर उड़ गया। इस मध्य चाहते हुए भी दोनों सहेलियों का मिलना संभव नहीं हो सका। एक दिन बाज़ार में खरीदारी के लिए निकली गीता की मुलाकात एक बड़े शॉपिंग सेंटर पर सरिता के बेटे कपिल से हो गई। उसने गीता को बताया कि आजकल उसकी व उसकी पत्नी बिंदु की नियुक्ति इसी शहर में है। सुनकर गीता को अच्छा लगा। कपिल ने उसे बताया कि माँ आँटी को बहुत याद करती हैं। सबके बारे में विस्तार से पूछकर गीता ने उसका फोन नंबर भी लिया। उसने कहा—“माँ मेरे पास ही हैं, वह आँटी से बात कर लेंगी। अच्छा हुआ जो पता चल गया कि हम एक ही जगह हैं।” कपिल ने स्वीकृति में अपना सिर हिला दिया।

घर आने पर गीता ने माँ को बताया। ममता को सुनकर अच्छा लगा। पति-पत्नी दोनों बेटी के पास ही थे। यद्यपि उनका स्थायी निवास लखनऊ में था, लेकिन गीता की तरफ से इस उम्र में उन्हें अकेले रहने की इज़ाज़त नहीं थी। बेटी दामाद के पास उन्हें पूरा आराम, सुविधा व सम्मान भी प्राप्त था। सरिता इसी शहर में है सुनकर ममता की इच्छा हुई सहेली से मिलने की। अतः एक रविवार को फोन से अपने आने की सूचना देकर गीता माँ-पिताजी के साथ कपिल के यहाँ चल दी।

समय के लंबे अंतराल के पश्चात अपनी सहेली से मिलना ममता को सुखद प्रतीत हुआ। एक-दूसरे से गले मिलती दोनों ही अत्यंत भावुक हो उठीं। ममता ने भीगे स्वर में कहा—“सरिता देख न, समय ने हमें किस तरह से मिलाया? जब से गीता को पता चला कि तुम यहीं हो, मेरे पीछे पड़ गई—चलिए आपको आँटी से मिला ले आऊँ।”

सरिता की आँखों से अश्रु बह चले। पता नहीं हर्ष के आधिक्य में अथवा अंतर्मन में कोई पीड़ा जगी थी। सामने बैठे उसके पति अभय जी भी सहेलियों के इस मिलन को जहाँ तृप्त नेत्रों से निहार रहे थे वहीं अपने चेहरे पर छाया उदासी को छिपाने में असमर्थ थे।

काफ़ी देर तक बातचीत का क्रम चलता रहा। अचानक सरिता ने मद्धिम आवाज़ में पूछा—“तुम यहाँ किसके पास हो ममता?”

“किसके पास? अरे गीता के पास हूँ और किसके पास रहूँगी? तुम तो जानती ही हो कि यही मेरी बेटी और बेटा दोनों हैं। लखनऊ में हमें अकेले रहने ही नहीं देती।” ममता ने स्नेह से गीता की तरफ देखकर कहा।

सरिता को सुनकर अच्छा तो लगा, पर मन के एक कोने में पश्चाताप भी हुआ। वह और ममता दोनों सहेलियाँ थीं। ममता ने बेटी को महत्त्व देकर सिर्फ बेटी ही चाहा। उसकी चाह सार्थक सिद्ध हुई। बेटी ने अपने माता-पिता को सम्मान के साथ सिर आँखों पर रखा। दूसरी वह स्वयं है, जिसने बेटे को आवश्यकता से अधिक महत्त्व देकर अपनी अजन्मी बेटी का गला गर्भ में ही घोंट दिया। जिस बेटे को अपना संपूर्ण प्यार-दुलार देकर अपनी ममता के आँचल में संजोकर बड़ा किया, आज वही बेटा अपने माता-पिता से परायों जैसा व्यवहार करता है।

सहेली को चुप देखकर ममता ने उसे झकझोरा—“अरे सरिता, कहाँ खो गई?”

“मैं सोच रही थी ममता कि गीता कितनी समझदार है। उस जैसी बेटी पाकर तो तुम्हारे भाग्य...”

“तुम्हारे ही भाग्य में क्या कमी है?” सरिता की बात बीच ही में काट कर ममता ने कहा—“कपिल क्या कम है? तुम और अभय जी ससम्मान अपने पुत्र के यहाँ हो।” ममता ने कपिल और बिंदु की तरफ प्रशंसनीय नज़रों से देखकर कहा। लेकिन वो दोनों ममता से आँख न मिला सके।

चाय-नाश्ते की औपचारिकता पूरी होने पर राजन और ममता ने जाने की इजाजत माँगी। सरिता का मन भर आया। उसने दुखी मन से पूछा—“अब कब आओगी ममता? जब भी आना फोन कर देना, मैं आ जाऊँगी।”

“तुम आ जाओगी? मैं कुछ समझी नहीं सरिता।” साश्चर्य ममता ने पूछा।

“हम दोनों यहाँ नहीं रहते ममता। कपिल ने हमें वृद्धाश्रम में डाल रखा है। बहू का कहना है कि मैं भी जाँब करती हूँ। दिन भर की थकी-माँदी आती हूँ। ऐसे में आप लोगों की देखभाल मेरे बस की बात नहीं है। विवश होकर कपिल ने हमें वृद्धाश्रम में भेज दिया।” कहते-कहते सरिता की आँखों से टप-टप कर अश्रु टपक पड़े।

“ओह तो यह बात है।” ममता की आवाज़ भी करुणा से भर गई।

“तुम्हारा फोन आने के बाद कपिल हमारे पास वृद्धाश्रम आया। वहाँ से हम दोनों को घर पर लाकर तुम्हारे आने की सूचना दी।” थोड़ा विराम देकर पूर्ववत् दुखी आवाज़ में सरिता ने कहा—“ये हमारे कर्मों का ही फल है ममता जो इस असहाय वृद्धा-अवस्था में हम अपनों से अलग रहने के लिए वृद्धाश्रम में ढकेल दिए गए हैं।”

ममता ने सहेली के कंधे पर हाथ रख कर ढाढ़स बँधाया। उसकी समझ में नहीं आ रहा था कि इस समय वह उससे क्या कहे क्या न कहे? बहरहाल फिर उसके पास आने का वायदा कर ममता ने विदा ली।

इधर कई दिनों से कपिल की इच्छा हो रही थी कि माँ-पिताजी को घर ले आएँ और अब यहीं रखें। उनकी कमी कभी-कभी उसके मन को बहुत दुखी कर देती, लेकिन पत्नी के दबाव के कारण वह उन्हें नहीं ला पाता। फिर भी एक दिन सहज भाव से उसने बिंदु से कहा—“बुरा न मानो बिंदु तो मैं चाहता हूँ कि माँ-पिताजी को यहीं ले आऊँ, उन्हें वहाँ अच्छा नहीं लगता और मुझे भी उनकी कमी बहुत खलती है।”

“क्या अब उन लोगों को यहीं रखने का मन बना रहे हो? पर मुझसे कोई उम्मीद मत रखना। उनकी देखभाल व सेवा मुझसे नहीं होगी। अभी ऑफिस और घर का जितना झंझट है वही मेरे लिए बहुत है।” सास-श्वसुर के प्रति उपेक्षित भाव दर्शाती बिंदु ने कहा।

“ठीक है सोच लूँगा।” एक बार फिर कपिल पत्नी के आगे मात खा गया। मन असमंजस में पड़ गया। जब पत्नी नहीं चाहती, उस स्थिति में वह माँ-पिताजी को कैसे ले आए? उनको लेकर घर में रोज़-रोज़ किच-किच हो, वह यह भी नहीं चाहता था। बहरहाल वह चुपचाप रहा और धैर्य के साथ उस दिन की प्रतीक्षा में रहा जब उसकी इस आकांक्षा का कोई सही समाधान स्वयं ही निकल आएगा।

दो सप्ताह बीत गए। आखिर कपिल के मनचाहे दिन ने थाप दे ही दी। एक दिन बिंदु के मायके से उसे यह बताने के लिए फोन आया कि उसके भइया-भाभी अमेरिका जा रहे हैं, अतः माँ व पिताजी अकेले रह जाएँगे। उनके साथ रहने वाला अथवा उनकी देखभाल करने वाला कोई

नहीं है। बिंदु को चिंता हुई, क्या करे कुछ समझ में नहीं आ रहा था। वहाँ अकेले रह रहे उसके मम्मी-पापा को हर तरह की दिक्कत व परेशानी का सामना करना पड़ सकता है। माता-पिता के लिए उसे बहुत चिंता हो गई। उसे उदास देख कर कपिल ने पूछा—“क्या बात है बिंदु, तुम्हारा मन कुछ ठीक नहीं दिख रहा है।”

पहले तो बिंदु बताने में कुछ झिझकी लेकिन फिर उसने कपिल से सारी बात साफ़-साफ़ बता दी और साथ ही अपनी चिंता का कारण भी बताया। कपिल ने सुना। क्षण-दो-क्षण को कुछ सोचते हुए सहज भाव से बोले—“तुमको किसी तरह की चिंता या फिक्र करने की ज़रूरत नहीं है। मैं जाकर तुम्हारे मम्मी-पापा को ले आऊँगा। वह लोग वहाँ अकेले नहीं, यहाँ हम सब लोगों के साथ रहेंगे।”

सहसा बिंदु को अपने कानों पर विश्वास नहीं हुआ कि वह जो कुछ सुन रही है वह सच है। जिसके माता-पिता की उसने हमेशा उपेक्षा और अनादर किया वह कितनी सहजता के कह बैठा कि तुम्हारे मम्मी-पापा को हम ले आएँगे। वह वहाँ अकेले नहीं हम लोगों के साथ रहेंगे। बिंदु ने झिझकते हुए कपिल की तरफ देखा। उससे आँख मिलाने में उसकी हिम्मत जवाब दे रही थी। आरंभ से लेकर अब तक सास-श्वसुर के प्रति किए गए अपने क्षुद्र आचरण का एक-एक दिन आँखों के समक्ष घूम गया। उसने कभी उन्हें माँ-पिता सा सम्मान नहीं दिया। लेकिन उसकी इन सब कमजोरियों पर बिना ध्यान दिए कपिल ने कितनी बड़ी बात कह दी। बिंदु का मन पश्चाताप की पीड़ा से भर उठा। कुछ इधर-उधर की बात न कर उसने सीधे शब्दों में कपिल से कहा—“मैं तुम्हारी महानता के आगे नतमस्तक हूँ कपिल और तुमसे माफी भी माँगती हूँ। विश्वास है मेरी गलतियों के लिए तुम मुझे ज़रूर माफ़ कर दोगे।”

कपिल ने पत्नी को विश्वास दिलाया कि वह उसकी तरफ़ से हमेशा क्षम्य रही है और सदैव रहेगी।

दूसरे दिन कपिल बिंदु के मम्मी-पापा को लेने चला गया। लेकिन जब उनके साथ वह वापस लौटा तो यहाँ उसके माँ-पिताजी भी घर पर ही मिले। बिंदु उन्हें वृद्धाश्रम से ले आयी थी। कपिल ने विजयपूर्ण एक दृष्टि पत्नी

पर डालकर माता-पिता का चरण-स्पर्श कर अपनी खुशी प्रकट की। उसके मन को अच्छा लगा कि उसका घर बड़े-बुजुर्गों एवं उनके स्नेहिल आशीर्वादों से भर गया था।

तृप्त मन से सरिता ने भी सोचा—ममता की बेटी से कुछ कम मेरे बेटे-बहू भी नहीं हैं। सुबह का भूला शाम को घर आ जाए तो वह भूला नहीं कहलाता।

अनमोल पुरस्कार

अमेरिका में तीन-चार माह अपने बेटे सचिन के पास रहकर हरीचंद्रन अपनी पत्नी लक्ष्मी के साथ चेन्नई वापस आ गए। जब से उन्होंने नौकरी से अवकाश ग्रहण किया था तबसे वह कुछ-कुछ दिनों के अंतराल पर पत्नी के साथ कहीं न कहीं सैर-सपाटे के लिए निकल ही पड़ते। अतः चेन्नई आने के कुछ दिनों पश्चात ही उनका अपनी बेटी-दामाद के साथ अंडमान-निकोबार द्वीप घूमने का कार्यक्रम बन गया। उनकी बहन रेखा एवं बहनोई सुरेश गत कई वर्षों से वहाँ स्थायी रूप से बस गए थे। उनके पास सूचना भेज दी गई। साथ में यह भी बता दिया कि आने वाला क्रिसमस भी वहीं मनाएँगे। अपने बेटे सचिन को भी हरीचंद्रन ने अपने कार्यक्रम की पूरी सूचना दे दी।

निश्चित समय पर सब पोर्टब्लेयर पहुँचे। रेखा और सुरेश उन्हें लेने आए थे। एक बहुमंजिली इमारत की पाँचवीं मंजिल पर उनका फ्लैट था, जहाँ से अंडमान द्वीप समूह के सौंदर्य युक्त प्राकृतिक दृश्य बिलकुल साफ़ दिखते थे। लगभग एक सप्ताह तक रेखा और सुरेश ने सबको कई दर्शनीय स्थल दिखाए जिनमें सेल्युलर जेल, हैवाक द्वीप, कार्विन कोल्स बीच तथा चिड़िया आईलैंड आदि प्रमुख थे। बराबर घूमते रहने से सभी काफी थक गए, अतः अब विश्राम करके सीधे क्रिसमस के दिन पूरा आनंद उठाने की बात तय की गई।

उधर अमेरिका में क्रिसमस के दिन सचिन और मीता बाहर की रौनक व चहल पहल देखने को निकल पड़े। पूरा शहर जगमगा रहा था। संध्योपरांत लगभग आठ-साढ़े आठ के करीब पति-पत्नी अपने फ्लैट में वापस आ गए। मीता भोजन तैयार करने किचन की तरफ बढ़ गई जबकि सचिन

टी.वी. खोलकर बैठ गए। समाचार आ रहा था। हठात् उनके कान खड़े हो गए। हृदय विदारक हादसा... भयंकर भूकंप... अंडमान निकोबार तथा अन्य कई द्वीप व टापू सुनामी लहरों की चपेट में। समाचार वक्ता बोल रहा था। समुंद्र से उठी सुनामी लहरों के तांडव की भीषण त्रासदी से भारत के अंडमान-निकोबार द्वीप समूह तथा कई देश एवं द्वीपों के हजारों लोगों की जल-समाधि बन गई।

सचिन का सिर चकरा गया। यह क्या हुआ? माँ-पिता जी, बुआ-फूफा जी का जाने क्या हाल होगा? उसने फोन, मोबाइल मिलाने का प्रयास किया। लेकिन सब व्यर्थ, कहीं से कुछ अपेक्षित जानकारी नहीं प्राप्त हो सकी। दुखी मन से वह टी.वी. पर ब्रेकिंग न्यूज ही देखता रहा। पता चला कि अंडमान-निकोबार से सभी स्थानों के टेलीफोन व डाक-तार के संपर्क टूट चुके हैं। धैर्य पूर्वक चिंतित मन से उसने सोचा—हमें बस उसी ईश्वर पर भरोसा रखना है। कुछ भी हुआ होगा तो उसी की कृपा से।

उधर अंडमान-निकोबार में 25 दिसंबर क्रिसमस के दिन क्रिसमस उत्सव का जलवा चारों तरफ छाया हुआ था। सभी होटलों, रेस्तरा तथा अन्य सार्वजनिक स्थानों पर डांस-आरकेस्ट्रा के साथ खाने-पीने का जश्न-दौर बखूबी चलता रहा। हरीचंद्रन और लक्ष्मी ने भी अपनी बेटी दामाद व बहन-बहनोई के साथ क्रिसमस-उत्सव का पूरा आनंद लिया। रात्रि एक बजे तक उत्सव चलता रहा। चारों तरफ देशी-विदेशी अतिथियों का जमघट दिखाई दे रहा था। हरीचंद्रन इतने आकर्षक व विशाल रूप से मनाए जा रहे क्रिसमस उत्सव में पहली बार ही सम्मिलित हुए थे अतः उन्हें भी यह मनमोहक वातावरण अति आकर्षक प्रतीत हुआ। लगभग दो बजे उत्सव समाप्त होने को आया तब सब अपने-अपने फ्लैट में वापस आ गए।

अपने कमरे में लेटे हरीचंद्रन की आँखें अभी लगी ही थीं कि वह हड़बड़ा कर उठ गए। उन्हें ऐसा प्रतीत हुआ जैसे मात्र उनका कमरा और फ्लैट ही नहीं अपितु पूरी बिल्डिंग झूले की तरह झूल रही है। बुजुर्ग हरी चंद्रन जैसे आने वाले भयंकर भूकंप से भावी विनाश के खतरे को भाँप गए। उन्होंने अविलंब उठकर सबको जगाया और उन्हें भावी खतरे से आगाह किया। फिर बिल्डिंग के हर फ्लैट के लोगों को भी आने वाले भयंकर खतरे

से सावधान करते हुए नीचे सुरक्षित स्थान पर भाग कर पहुँचने को कहा। अपनी परवाह किए बिना उन्होंने विद्युत वेग से नीचे जाकर होटल मालिक को, जिसे अभी इस खतरे का अनुमान नहीं लग सका था, सावधान किया। हरीचंद्रन की चैतन्यता के फलस्वरूप होटल में ठहरे सभी देशी-विदेशी मेहमान अविलंब नीचे सुरक्षित स्थान पर पहुँच गए। इस संकट की घड़ी में हरीचंद्रन ने एक बुजुर्ग अनुभवी व्यक्ति होने के कारण सबको सजग कर बचाने का प्रयास करना अपना कर्तव्य समझा। जबकि इस भाग-दौड़ में वृद्ध हरीचंद्रन स्वयं काफी ज़ख्मी हो गए। उन्होंने इसकी रंचमात्र भी परवाह नहीं की।

इस तरह हरीचंद्रन की तत्परता एवं सावधानी के परिणाम-स्वरूप सैकड़ों लोगों ने भागकर सुरक्षित स्थान पर शरण लेकर अपने प्राण बचाए। बाद में सबको विदित हुआ कि हिंद महासागर में आए भूकंप व उससे उठी सुनामी लहरों के प्रचंड तांडव ने अनेक द्वीपों व देशों के तटीय इलाकों में कम से कम एक से डेढ़ दो लाख व्यक्तियों को काल का ग्रास बना दिया। हरीचंद्रन के प्रयास से बचे लोगों ने उन्हें धन्यवाद देकर आभार व्यक्त किया।

तीसरे दिन जब कुछ शांति-व्यवस्था हुई तब हरीचंद्रन अपने परिवार के साथ चेन्नई वापस आए। यहाँ आते ही उन्होंने सचिन से फोन पर पूरा हाल बताया। वह समझ रहे थे बच्चे सुनामी का सुनकर चिंतित होंगे। अपने माता-पिता की आवाज़ फोन पर सुनकर सचिन के मन को तसल्ली सी मिली। माँ ने उसे बताया—“बहुत विस्तृत पैमाने पर वहाँ जन-धन की हानि हुई। इस दैवी विपदा से जो बच गए उसे भी उसी ईश्वर की कृपा समझो।” क्षणभर रुककर माँ ने पुनः कहा—“हाँ सचिन बेटे, मैं यह बताना तो भूल ही गई कि वहाँ तुम्हारे पिताजी की सावधानी व तत्परता से सैकड़ों व्यक्ति अपने प्राण बचाने में कामयाब रहे।”

“फिर तो माँ आप लोगों का वहाँ जाना कुछ सीमा तक सार्थक ही रहा। मैं तो यहाँ बहुत चिंतित रहा।” सचिन ने कहा और रिसीवर रख दिया। पिता के प्रति उसका मन गर्वान्वित हुआ। उस त्रासदी के दुखद समाचार के बीच यह हलका सा सुखद समाचार उसके मन को अच्छा लगा। उसने मन ही मन पिता की सराहना की।

कुछ समय बीता। एक बड़ी सामाजिक संस्था ने हरीचंद्रन के पास सूचना भेजकर आग्रह किया कि आप जैसे बुजुर्ग व्यक्ति ने अपनी परवाह किए बिना सैकड़ों लोगों के जीवन के रक्षार्थ जो प्रयास व सत्कार्य किया हम उससे अत्यधिक प्रभावित व गर्वान्वित हैं। अतः हमारी हार्दिक इच्छा है कि हम अपनी संस्था की तरफ से आपको सम्मानित व पुरस्कृत करें। फलां तारीख को आयोजित उत्सव में पधारने की कृपा करें। हम आपके आभारी होंगे।

लेकिन हरीचंद्रन ने स्पष्ट शब्दों में मना करते हुए लिख भेजा—“आपके द्वारा प्राप्त सम्मान के लिए धन्यवाद। वह मेरा कर्तव्य था। हमारे सैकड़ों भाई-बहनों का उस अप्रत्याशित त्रासदी से मेरे थोड़े से प्रयास से प्राण बच सके...यह अनमोल पुरस्कार क्या मेरे लिए कुछ कम है? मुझे कोई सम्मान अथवा पुरस्कार नहीं चाहिए।” हरीचंद्रन।

सुखद संयोग

दिन भर का थके होने के कारण रात्रि में भोजनोपरान्त आलोक तो जल्दी सो गए लेकिन भारती को देर रात तक नींद नहीं आयी। नींद में बेखबर सोते पति के चेहरे पर दृष्टि टिकाए वह सोचती रही। हम दोनों के परिणय-सूत्र में बंधने का संयोग भी कितना आकस्मिक एवं सुखद रहा। शादी तय कहीं और थी लेकिन परिस्थितियों ने ऐसा पलटा खाया कि...। भारती ने दूसरी तरफ करवट ले ली। बिलकुल समाने शो-केस में उसकी और आलोक की शादी की रंगीन तस्वीर लगी थी। दृष्टि उसी पर टिक गई। चित्र को निर्निमेष निहारती उसकी आँखों के समक्ष अतीत के पन्ने खुलते गए।

चार वर्ष पूर्व जब वह एम.ए. फाइनल में थी तभी उसकी शादी दिल्ली के मनोहर दास के पुत्र शैलेश के साथ तय हो गई थी। शैलेश इंडियन आयल में कार्यरत था। उसने भारती को देखने की आकांक्षा प्रकट की थी। अतः उसे अपने पिता अविनाश चंद्र के साथ दिल्ली जाना पड़ा। वहाँ से वापस लौटते समय संयोग से प्रयागराज ट्रेन में आलोक के पिता श्री प्रकाशरंजन का साथ हो गया। भारती तो उन्हें मात्र नमस्ते करके ऊपर बर्थ पर लेटने चली गई थी। लेकिन उसके पिताजी और प्रकाशरंजन के बीच काफ़ी देर तक बातचीत होती रही।

अविनाश चंद्र ने अपने सहयात्री को बताया कि वह दिल्ली में अपनी बेटी की शादी तय करके आ रहे हैं। प्रकाशरंजन ने संतोष व्यक्त करते हुए कहा—“खबर तो आपने अच्छी सुनाई। अन्यथा आजकल लड़कियों की शादी तय कर लेना आसान काम नहीं रह गया है।”

“आप ठीक कह रहे हैं। अब देखिए न...केवल बेटी को दिखाने के उद्देश्य से हमें इलाहाबाद से दिल्ली जाना पड़ा।”

“मेरी शुभकामनाएँ स्वीकार कीजिए। हाँ, मैं भी इलाहाबाद का रहने वाला हूँ, यदि इस मुलाकात को कुछ महत्त्व देकर हमें याद करिएगा तो मैं आपकी बेटी के विवाह में अवश्य आऊँगा।” थोड़ा विराम देकर उन्होंने पुनः कहा—“वैसे मैंने अपना नियम बना लिया है। दहेज लेने वालों के यहाँ विवाह में कतई सम्मिलित नहीं होता। चाहे वह कितना भी निकटतम रिश्तेदार या दोस्त क्यों न हो? पर बेटी का पिता विवश होता है, अतः बुलाने पर बेटी के विवाह में न जाना भी अधर्म समझता हूँ।” प्रकाशरंजन ने धारा प्रवाह बोलते हुए अपना विचार व्यक्त किया।

“आपके विचार निश्चय ही प्रशंसनीय हैं, पर इतने स्वस्थ ख्यालात हमारे समाज में है ही कितने लोगों के?”

“मैं सबका जिम्मा नहीं लेता। अपनी जानता हूँ। यदि ईश्वर की कृपा रही तो अपने बेटे आलोक की शादी में अपने विचारों से टलूँगा नहीं।” प्रकाशरंजन की आवाज़ में दृढ़ता थी। इसके बाद दोनों व्यक्तियों ने एक-दूसरे को अपने-अपने निवास का पता व फोन नंबर नोट कराया और आपस में वायदा किया कि समय विशेष पर एक-दूसरे को अवश्य याद करेंगे।

समय बीतने के साथ घर में भारती के विवाह की तैयारियाँ आरंभ हो गई थी। दहेज की माँग अधिक होने के कारण बजट बनाकर प्रत्येक वस्तु का प्रबंध करना अनिवार्य हो गया था। दो लाख नकद के साथ वीडियो कैमरा, वी.सी.आर., यामाहा तथा बड़ा कलर टी.वी. आदि के साथ अन्य अनेकों सामनों की फेहरिस्त मनोहरदास ने अविनाशचंद्र को सौंप दी थी। सबका प्रबंध जैसे-जैसे किया जा रहा था। धीरे-धीरे विवाह का समय पास आ रहा था। बाहर जाने वाले निमंत्रण कार्ड भेजे जा चुके थे। स्थानीय कार्ड भी बाँटे जा रहे थे। अविनाशचंद्र ने बिना भूले ट्रेन के सहयात्री मित्र प्रकाशरंजन को सपरिवार आने का निमंत्रण दिया। उन्होंने आने का वचन भी दिया।

इसी बीच अचानक मनोहरदास का फ़ोन आया कि उन्हें कम से कम मारुति जेन अवश्य चाहिए। अतः विवाह से पूर्व वह इसका प्रबंध कर दें अन्यथा अपनी बेटी का विवाह स्थगित समझें। उनकी माँग सुनकर अविनाशचंद्र के पैरों तले धरती सरकती मालूम पड़ी। अब तो उनके पास देने के लिए

कानी कौड़ी भी नहीं है फिर यह कार? पर वह मना न कर सके। बेटी की शादी रुक जाने के डर से घबराहट में उन्होंने हामी भर दी।

दो-तीन दिन वह अत्यधिक मानसिक उलझन से घिरे रहे। लाख सोचने पर भी कोई समाधान उनकी समझ में नहीं आ रहा था। किसी से पैसा माँगना दोस्ती और रिश्तेदारी दोनों में दरार डालना था। हठात उन्हें अपने ट्रेन के सहयात्री मित्र प्रकाशरंजन का स्मरण हो आया। शायद वह ही कोई हल निकाल सकने में सक्षम हों। अतः वह उनके यहाँ जाने के लिए उठ खड़े हुए।

इधर-उधर की बातचीत के बाद जब प्रकाशरंजन को दो लाख नकद, ढेर सारे कीमती सामान उस पर से मारुति जेन की माँग की बात पता चली तो उन्हें कष्ट पहुँचा। दहेज लोभी दरिदों को तो वह एक भी पैसा देने के पक्ष में नहीं है। हर पहलू पर विचार कर वह मित्र का हाथ अपने हाथों में लेकर अत्यंत सहजभाव से बोले—“आपकी पीड़ा को मैं खूब समझ रहा हूँ। पर दहेज लोभियों को देने के लिए मैं आपकी पैसे की मदद नहीं करना चाहता। क्योंकि यह मेरे उसूल के खिलाफ़ है। लेकिन दूसरा समाधान है मेरे पास, यदि आप चाहें और कहें तो...” रुक गए प्रकाशरंजन।

“हाँ...हाँ...बताइए न। मैं तो इसी कारण आपके पास आया हूँ।” अविनाशचंद्र को लगा जैसे उनके सिर से कोई भारी बोझ उतरने वाला है।

“मैंने आपके बताया था कि मेरा बेटा इंजीनियर है। मैं आपकी बेटी को ट्रेन में देख चुका हूँ और कुछ ही दिनों में हमने एक-दूसरे को समझ भी लिया है। जहाँ तक मैं समझता हूँ अपने बेटे के विवाह से संबंधित मेरी तलाश अब पूरी हो गई है। किसी ज़रूरतमंद के प्रति मेरा उसूल समर्पित हो इससे बढ़कर संतोषप्रद बात मेरे लिए क्या होगी। इसके साथ ही आपका परिवार और आपकी बेटी दोनों ही हमारी आकांक्षा के अनुरूप है। यदि आपको मंजूर हो तो मैं छोटी सी बरात लेकर आ जाऊँ।” बिलकुल स्पष्ट शब्दों में कहा प्रकाशरंजन ने।

हठात अविनाशचंद्र को अपने कानों पर विश्वास नहीं हुआ कि वह क्या सुन रहे हैं? ऐसा प्रतीत हुआ जैसे कोई सुखद स्वप्न देख रहे हों। उनकी मनःस्थिति को भाँपकर प्रकाशरंजन ने पुनः कहा—“आपको निश्चय ही

आश्चर्य हो रहा होगा। लेकिन मैं समझता हूँ इसमें आश्चर्य की कोई बात नहीं है। मित्र ही मित्र के काम आता है।”

भाव-विभोर से अविनाशचंद्र ने उठकर उन्हें गले से लगा लिया—“मुझे अब भी विश्वास नहीं हो रहा है दोस्त कि आपने कितनी बड़ी मुसीबत से मुझे उबारा है।” उनके नेत्रों से खुशी के अश्रु उमड़ पड़े। हर्ष का सैलाब उफन-उफन कर बाहर आना चाहता था। सामने खड़े महान विचार वाले व्यक्ति के प्रति आभार व्यक्त करने के लिए।

प्रकाशरंजन ने पुनः सुझाव दिया—“हो सकता है मनोहरदास इस परिवर्तन को स्वीकारने में आपत्ति खड़ा करें, अतः हमें शीघ्र प्रबंध करके चुपचाप दोनों बच्चों की कोर्ट मैरिज करा देनी होगी। बाद में समय निर्धारित करके बहूभोज आदि भी हो जाएगा।” अनुग्रहीत से अविनाशचंद्र ने उनकी बात को स्वीकारा।

शांतिपूर्वक शालीनता से दोनों का कोर्ट मैरिज सकुशल संपन्न हो गया। देहेज की कोई वस्तु प्रकाशरंजन ने स्वीकार नहीं की। जहाँ सभी रिश्तेदार, अतिथि और मित्रों ने प्रकाशरंजन की सज्जनता व सहृदयता की भूरि-भूरि प्रशंसा की वहीं स्वयं अविनाशचंद्र ऐसे सभ्रांत समधी व दामाद मिलने से हर्ष से फूले नहीं समा रहे थे।

दरवाजे की घंटी बजने की आवाज़ ने भारती की तंद्रा तोड़ी। तमाम रात बीते दिनों की स्मृति में खोये-बिखरे सरक गई थी। आलोक से उसके विवाह का संयोग कितना सुखद था। सोचकर आज भी उसका मन अपने ससुराल वालों के प्रति विशेष रूप से अपने श्वसुर जी के प्रति गर्वान्वित हो उठता है। उसने देखा आलोक अभी सो रहे थे, साथ में नन्हा बेटा तन्मय भी। नित्य की भाँति हॉकर पेपर दरवाजे के नीचे से सरकाकर घंटी बजा कर चला गया था। पलंग के पास साइड टेबल पर पेपर रखकर भारती मुस्कराती हुई रसोई-घर की तरफ बढ़ गई। बेड-टी और तन्मय के लिए दूध की बोतल तैयार करने के लिए।

नीड़ फिर बस गया

तीन-चार मिनट रुकने के बाद राजधानी एक्सप्रेस चल पड़ी और देखते ही देखते पूरी स्पीड भी पकड़ ली। रात्रि के बारह बजे चुके थे। अतः ट्रेन के कर्मचारी यात्रियों के लिए कंबल, चादर व तौलिए के साथ पीने का पानी लाकर अपनी ड्यूटी पूरी करके चले गए। मयंक की बर्थ नीचे की थी। वह लेटने के लिए तैयार हुआ तो सामने की बर्थ पर दृष्टि चली गई। जिस पर एक लंबी, स्मार्ट व सुंदर युवती भी अपने लेटने के ही प्रबंध में मशगूल थी। जाहिर था कि वह भी इलाहाबाद से ही चढ़ी थी। क्योंकि इससे पूर्व चढ़े यात्रियों के सोने की व्यवस्था पहले ही हो चुकी थी। बहरहाल, सोने से पूर्व एक क्षण के लिए दोनों की नज़र टकराई और फिर दोनों अपनी-अपनी बर्थ पर सिमटकर निद्रा की गोद में जा पड़े।

प्रातः साढ़े छह-सात बजे के लगभग वेटर चाय लेकर आए तब मयंक की नींद खुली। सिरहाने पेपर रखा हुआ था। वह उठकर बैठ गया। सामने बर्थ वाली युवती भी जग गई थी। वह तो तुरंत टूथब्रश-पेस्ट लेकर बाथरूम की तरफ बढ़ गई। मयंक ने सोचा वह भी मुँह-हाथ धो ले, लेकिन जब वह ब्रश के साथ पेस्ट खोजने लगा तो टूथ-पेस्ट नहीं मिला। निश्चय ही वह रखना भूल गया। तब तक वह युवती वापस आ गई। परिचय न होने के कारण मयंक ने क्षण भर को सोचा, फिर झिझकते हुए बोला—“माफ़ करिएगा मैडम, मैं अपना पेस्ट रखना भूल गया। यदि आप...” बात पूरी होने से पूर्व ही वह धीरे से बोली—“लीजिए न, तकल्लुफ़ की क्या बात है?”

फ़्रेश होने के बाद टूथ-पेस्ट युवती को पकड़ाते हुए मयंक ने धन्यवाद दिया। दोनों चाय पीने में लग गए। बीच में मयंक ने ही मौन तोड़ते हुए कहा—“आपको आपत्ति न हो तो आपका शुभ नाम जान सकता हूँ।”

“आपत्ति की कोई बात नहीं, मुझे लक्ष्मी कहते हैं। और आपको...?”
लक्ष्मी ने मुस्कराकर मयंक से दृष्टि मिला कर पूछा।

“मैं मयंक प्रकाश हूँ। इलाहाबाद का रहने वाला और वहीं के स्टेट बैंक में प्रोवेशनरी ऑफिसर के पद पर कार्यरत हूँ। बैंक के काम से ही कोलकाता जा रहा हूँ।” अपना परिचय बताकर मयंक चुप हो गया।

“धन्यवाद, आपने तो अपना पूरा ही परिचय दे दिया।” मुस्करा पड़ी लक्ष्मी। चाय पीने के बाद मयंक और लक्ष्मी पेपर व मैगजीन देखने में व्यस्त हो गए। लेकिन चूँकि अभी हावड़ा आने में काफी समय था और दोनों में परिचय का आदान-प्रदान हो चुका था। अतः बीच-बीच में बातचीत से अच्छा समय कटता रहा।

बातों ही बातों में मयंक को यह जानकारी हो गई कि लक्ष्मी बीमा इंश्योरेंस ऑफिस में कार्यरत है और इस समय इलाहाबाद में ही पोस्टेड है। सुनकर मयंक को अच्छा लगा। लक्ष्मी कोलकाता से एक सप्ताह बाद वापस लौटेगी जबकि उसे दो दिन में ही काम समाप्त करके लौटना था। बहरहाल दोनों ने एक-दूसरे के निवास का पता व फोन नंबर ले लिया। मयंक को लक्ष्मी सरल, सुशील व सुंदर लगी और लक्ष्मी को मयंक बातचीत व अपने आकर्षक व्यक्तित्व के कारण हजारों में एक लगा।

ट्रेन एक बजे हावड़ा पहुँची। सभी यात्रियों के साथ मयंक और लक्ष्मी भी उतरे। एक-दूसरे को देखा, घर लौटने पर मिलने के वायदे के साथ दोनों अपने-अपने गंतव्य के लिए बढ़ गए।

बैंक का काम समाप्त कर मयंक दो दिन बाद हावड़ा से लौट आया। लेकिन लक्ष्मी से मिलने की उत्कट आकांक्षा के कारण चार दिन बहुत ही मुश्किल से कटे। अपनी इस हालत से उसे विश्वास करना पड़ा कि ट्रेन में मिली लक्ष्मी के आकर्षण डोर से वह बँध गया है। कई दिनों से उसे शांत व चुप-चुप देखकर माँ (वसुंधरा) ने चिंतित होकर पूछा—“क्या बात है बेटा? आजकल बहुत सुस्त दिखते हो, तबियत तो ठीक है?”

मयंक चौंक सा गया। सँभलकर बोला—“बिल्कुल ठीक हूँ, माँ। आजकल बैंक में काम अधिक हो जाता है, इसी से थक जाता हूँ।” “चल

चाय बनाती हूँ। पीकर थकान दूर होगी और मन भी ठीक हो जाएगा।”
माँ के कहने पर वह बिना कोई आपत्ति किए चाय पीने चल पड़ा।

लक्ष्मी को जिस ट्रेन से आना था मयंक को ज्ञात था। अतः वह उसे लेने स्टेशन पहुँच गया। गाड़ी आई, लक्ष्मी बाहर निकली। हाय, हैलो के बाद दोनों कार में बैठ गए। रास्ते में मयंक ने दबी जुवान से कहा—“आपसे मिलने के बाद से ऐसा लगता है जैसे मेरा कुछ खो सा गया है।”

यद्यपि मयंक के आकर्षक व्यक्तित्व और कुशल बात-व्यवहार के तरीके ने लक्ष्मी के मन को भी प्रभावित किया था लेकिन अपने मन के भाव को तटस्थ रख चेहरे पर मुसकान बिखेरती लक्ष्मी ने कहा—“लेकिन मैंने तो आपका कुछ नहीं लिया।”

“यह आप कह सकती हैं, मैं नहीं।” यह कहने के साथ ही लक्ष्मी का घर आ गया। दूसरे दिन संध्या समय गेलार्ड में मिलने के वायदे के साथ दोनों ने एक-दूसरे से विदा ली।

दूसरे दिन की मुलाकात में दोनों एक-दूसरे के बारे में काफी कुछ जान समझ गए। एक दिन जब बातों ही बातों में मयंक ने यह जानना चाहा कि वह यहाँ अकेली क्यों रहती है। उसके परिवार के शेष सदस्य कहाँ रहते हैं? लक्ष्मी ने उत्तर में जो कुछ बताया उससे मयंक का मन आहत हुआ।

लक्ष्मी ने निःसंकोच अपने जीवन के सत्य से मयंक को परिचित कराते हुए बताया—वह अनाथालय की देन है। दिल्ली के एक अनाथ आश्रम में वह अपनी शिशु अवस्था से ही है। कब, क्यों और कौन उसे अनाथ आश्रम में डाल गया था वह आज तक नहीं जान सकी। लेकिन वहाँ के मालिक और संरक्षक ने उसके साथ हमेशा अच्छा और स्नेहपूर्ण व्यवहार किया जिस कारण वह एम.कॉम. पूरा कर सकी और थोड़े से प्रयास के बाद उसे वहीं के लाइफ इंश्योरेंस ऑफिस में नौकरी भी प्राप्त हो गई। कुछ दिन दिल्ली में कार्यरत रहने पर उसका स्थानांतरण इलाहाबाद हो गया।” थोड़ा रुककर लक्ष्मी ने पुनः कहा—“अवकाश में दिल्ली हो आती हूँ। आय की आधी रकम उस अनाथ आश्रम को देना भी मैंने अपना कर्तव्य समझा।” लक्ष्मी अपना इतिहास और वर्तमान बता कर चुप हो गई। मयंक कुछ बोला नहीं...अपितु किसी विचार में खो गया। लक्ष्मी ने टोका—“जानती हूँ...मेरा इतिहास सुनकर तुम्हें अच्छा नहीं लगा होगा।”

“नहीं... नहीं... ऐसी कोई बात नहीं है।” मयंक चौंकते हुए बोला—“मुझे गलत न समझिए। फिर जहाँ एक-दूसरे को इनसान समझ लेता है, पसंद आ जाता है वहाँ अन्य बातें गौण हो जाती हैं।” लक्ष्मी ने उसके कथन को स्वीकारा। कुछ देर और बैठने के बाद लक्ष्मी ने कहा—“अब देर हो रही है, चलना चाहिए।”

“हाँ ज़रूर,” मयंक ने कहा और दोनों उठ खड़े हुए।

लक्ष्मी का अतीत जानकर मयंक दुविधा में पड़ गया। उसने जबसे उसे देखा और जाना था, तभी से उसके लिए मन में चाहत उभर आई थी। थोड़े से समय की जान-पहचान में दोनों एक-दूसरे को पसंद करने लगे थे। उसने सोचा भी था कि कुछ दिनों बाद घर में सबको इस बारे में बताकर धूमधाम से उससे विवाह रचा लेगा। लेकिन अब मन में संशय उत्पन्न हो गया। अनाथ आश्रम की लड़की जानकर पता नहीं माता-पिता क्या रुख अखिरायार करें? पर तुरंत स्वयं ही अपने मन के संशय को दूर करते हुए मयंक ने सोचा—लेकिन अब इस जीवन में वह किसी और के लिए सोच भी नहीं सकता है।

बहरहाल उसने लक्ष्मी से अपने दिल की बात साफ़-साफ़ कह दी। लक्ष्मी भी इस सत्य से अनभिज्ञ नहीं थी। उसे अपने दिल के हाल से ही मयंक के हाल का अनुमान लग गया था। उसने भावुक होकर कहा—“मेरे अतीत की किताब के पन्नों को पढ़ने के बाद अगर तुमको और तुम्हारे घर वालों को आपत्ति नहीं तो मैं खुशकिस्मत हूँ।” मयंक ने उससे यह नहीं बताया कि अभी उसने घर में इसका जिक्र नहीं किया है।

कुछ दिन बीत गए। एक दिन संध्या समय वसुंधरा ने अत्यंत स्नेह व अधिकार के साथ मयंक से कहा—“बेटे, मैं अकेली रहती-रहती ऊब गई हूँ। मैंने निश्चय कर लिया है कि अब बहू को लाना ही है।” कहने के साथ ही उन्होंने उन लड़कियों के चित्रों को दिखलाना शुरू कर दिया जो उसकी शादी के लिए आए थे। लेकिन मयंक ने चित्रों को देखने में कोई रुचि नहीं दिखलायी। तब माँ ने पूछा—“इतने सारे चित्रों में तुझे कोई लड़की पसंद नहीं आयी?”

“माँ, अभी मैं कुछ दिन रुककर शादी करना चाहता हूँ।” माँ को टालने की नियत से मयंक ने कहा।

“अब यह कुछ नहीं चलेगा। जल्दी बता कौन-सी फोटो पसंद है?” वसुंधरा ने हठपूर्वक कहा। माँ की ज़िद्द देखकर मयंक को बताना पड़ा कि उसने एक लड़की पसंद कर ली है और उसी से विवाह भी करना चाहता है। सुनकर वसुंधरा का मन ज़रा भी मलिन नहीं हुआ, अपितु उसने अत्यंत हर्ष के साथ बेटे की पसंद को स्वीकार कर लिया। लेकिन जब अमरेंद्र को (मयंक के पिता) इस सत्य की जानकारी हुई तब उन्होंने मयंक को शादी की अनुमति नहीं दी। अमरेंद्र ने उसे समझाने का पूरा प्रयास किया—“बेटे जिस लड़की के माता-पिता, जाति-धर्म आदि का कुछ पता न हो उससे विवाह करने की बात हमारे परिवार, खानदान और समाज के व्यक्ति कभी स्वीकार नहीं करेंगे।”

मयंक ने हिम्मत करके कहा—“पिताजी, मुझे सिर्फ अपने परिवार से मतलब है। आपको तो कोई आपत्ति नहीं है।”

“मुझे भी खानदान और समाज से अलग न समझो।” अमरेंद्र ने कहा और वहाँ से हट गए।

मयंक माता-पिता की आकांक्षा का सम्मान न कर सका। यद्यपि वह समझता था कि वही उनकी एकमात्र औलाद है और उससे ही उनकी समस्त तमन्नाएँ पूरी होनी थीं। पर इस समय वह भी विवश हो चुका था। इस बात की उसे चिंता थी कि यदि नाराज़ होकर माता-पिता उसके साथ नहीं रहना चाहेंगे तो उनकी वृद्धावस्था में उनकी देखभाल के प्रति वह सदैव चिंतित रहा करेगा।

उसने लक्ष्मी को माता-पिता की नाराज़गी और अपने निर्णय से अवगत करा देना आवश्यक समझा। बुझे मन से लक्ष्मी ने कहा—“वह हमें खुशी-खुशी स्वीकार करते तो बात कुछ और थी। अपनी इस कमी को लेकर मेरे मन में हमेशा भय बना रहता था मयंक, जो आज सत्य होकर सामने आया। मैं तुमको यह सुझाव कभी नहीं दूँगी कि मेरे कारण तुम अपने परिवार से पृथक हो जाओ।”

मयंक ने उसे समझाते हुए कहा—“बाद में सब ठीक हो जाएगा लक्ष्मी। तुम चिंता मत करो। मुझे पूरा विश्वास है कि वे लोग हम दोनों को अवश्य क्षमा कर देंगे।” लक्ष्मी ने दुखी मन से मयंक की बात को स्वीकार करते हुए कहा—“इतनी ही खुशकिस्मत होती तो अनाथ-आश्रम मेरा घर न बनता।”

“तुम्हारा ऐसा सोचना उचित नहीं है लक्ष्मी। बाद में भगवान की कृपा व हमारे प्रयास से सब कुछ ठीक हो जाएगा।” मयंक ने पुनः लक्ष्मी को समझाया। इसके पंद्रह दिनों के अंदर अपने कुछ मित्रों के समर्थन व सहयोग से मयंक ने लक्ष्मी के साथ कोर्ट मैरेज कर ली और पृथक फ्लैट लेकर रहने की व्यवस्था भी कर ली।

पिता के स्वभाव से परिचित होने के कारण मयंक जानता था कि उनके विकट क्रोध का सामना करना पड़ेगा, फिर भी दोनों दूसरे दिन ही माता-पिता का आशीर्वाद लेने के लिए घर गए। संयोग से अमरेंद्र ने ही दरवाजा खोला। सामने बेटे-बहू को देखकर वह आपे से बाहर हो गए। क्रोध में कुछ बोलते इससे पूर्व ही पीछे से आ खड़ी हुई वसुंधरा उन्हें रोकती हुई बोली—“आशीर्वाद लेने आए बच्चों को आशीष न दीजिए तो कम से कम क्रोध भी तो न करिए।” लक्ष्मी सुनकरे बार्डर की लाल साड़ी में सिर पर पल्लू डाले मयंक के बगल में खड़ी थी। नव वधू का आकर्षण और सौंदर्य चेहरे पर झलक रहा था। बेटे-बहू को सामने देखकर वसुंधरा की आँखें नम हो आईं। कितनी हसरत भरी थी मन में इस दिन के लिए उसने सोचा। पर तुरंत अपने मन को संयत कर, क्रोध से आग बबूला हो रहे अपने पति का हाथ पकड़कर बलपूर्वक अंदर ले गई। मयंक और लक्ष्मी माँ-बाप का चरण-स्पर्श किए बगैर उदास से लौट आए।

समय बीतता रहा। अमरेंद्र बहुधा दुखी होकर पत्नी से कहते—“वसुंधरा, कभी सोचा भी नहीं था कि मयंक हमारी इच्छा के विपरीत इतना बड़ा कदम उठा लेगा। उसकी शादी के लिए कितने-कितने अरमान संजो रखे थे हमने अपने दिल में, सब निष्क्रिय से पड़े के पड़े रह गए।” हृदय की व्यथा जुबान से उजागर क्या होती उनकी आँखें अश्रुओं से तर हो गईं।

धैर्य का दामन पकड़े वसुंधरा ने कहा—“कुछ ऐसा ही हमारे भाग्य में लिखा था, लेकिन हमें निराश नहीं होना चाहिए। वह सुबह ज़रूर आएगी जब हम अपने बच्चों के साथ अपने रंगीन नीड़ में होंगे।” थोड़ा रुककर कुछ आशान्वित होकर वसुंधरा ने पुनः कहा—“जब तक मयंक हमारे साथ था घर का माहौल कितना भरा-भरा और प्यारा लगता था। लेकिन अब तो जैसे घर काट खाने को दौड़ता है। हमें तो लगता है कि बच्चों की गलती माफ़ कर हमें उनको अपना लेना चाहिए।”

“नहीं, ऐसा कभी नहीं होगा। उसने हमारा कितना बड़ा अपमान किया है। मैं अपने संबंधियों और समाज में मुँह दिखाने योग्य भी नहीं रहा। मैं उसे कभी माफ़ नहीं कर सकता वसुंधरा।” क्रोध में उत्तेजित होकर अमरेंद्र ने कहा।

“ठीक है, कोई बात नहीं, जैसी तुम्हारी इच्छा।” वसुंधरा ने बात आगे नहीं बढ़ाई। वह अमरेंद्र को अधिक क्रोध में नहीं आने देना चाहती थी क्योंकि वह उच्च रक्तचाप और हृदय के मरीज थे।

दो माह पश्चात बम-पटाखों की आवाज़ के साथ दीपों की जगमग रोशनी लिए दीपावली का पर्व आया। लक्ष्मी और मयंक की हार्दिक इच्छा हुई कि इस ज्योतिर्मय पर्व पर एक बार पुनः पिताजी और माताजी से क्षमा माँगने की हिम्मत कर उनके पास जाएँ और उन्हें दीपावली की शुभकामना भी दे जाएँ। अतः संध्या समय अपने घर को दीपकों और झालरों से सजाने व जगमगाने के बाद दोनों तैयार होकर बाहर निकल पड़े।

अपने घर के सामने पहुँचकर मयंक ठहर गया। दीपावली के नाम पर गिनती के कुल दो दीपक बाहर टिमटिमा रहे थे। मयंक के दिल को ठेस लगी। इससे पूर्व ऐसा तो कभी नहीं हुआ था। निश्चय ही उससे अलग होने के कारण दीपावली के ज्योतिर्मय पर्व पर भी गम के अंधकार ने माँ-बाप की खुशियों पर अपना आधिपत्य जमा लिया है। सोचते हुए मयंक ने कॉलबेल दबा दी। माँ ने किवाड़ खोला। मयंक और लक्ष्मी दोनों माँ के चरणों पर झुक गए। लक्ष्मी को लगा उसकी बड़ी भारी तमन्ना पूरी हुई है। वसुंधरा ने बेटे-बहू को हृदय से लगा लिया। क्षणभर को जैसे वह कहीं खो-सी गई हो। बच्चों के अभाव में घर कैसा रिक्त-रिक्त लगता है। छम-

छम पायल बजाती बहू घर-आँगन में घूमती-चलती तो मन और आँखें दोनों तृप्त हो जातीं। मयंक माँ का ध्यान तोड़ते हुए बोला—“माँ, आज दिवाली है और बाहर केवल...।” उसे बीच में ही रोककर वसुंधरा ने दुखी भाव से कहा—“कौन जलाए बेटा? और फिर जब घर का चिराग ही घर से दूर है तो ये दिये कब तक उजाला करेंगे?” उसकी आँखें नम हो आईं।

उन्हें धैर्य बँधाते हुए मयंक ने कहा—“दुखी न हो माँ। हम आपसे थोड़ा दूर अवश्य हैं लेकिन अलग नहीं हैं माँ। हमें आशीर्वाद दीजिए कि आप लोगों की छत्र-छाया में आकर रहने का सुअवसर जल्द प्राप्त हो और...” बात अभी पूर्ण नहीं हो पाई थी कि पीछे से अमरेंद्र आते दिखे। उनकी तेज़ आवाज ने तीनों को हिला-सा दिया—“कौन, मयंक है क्या? उससे कह दो तुरंत चला जाए। इस घर के दरवाज़े उसके लिए बंद हो चुके हैं।” विवश नेत्रों से माँ ने बेटे-बहू की तरफ़ देखा और दरवाज़े बंद कर अंदर आ गई। मन को पीड़ा पहुँची कि त्योहार के दिन बच्चों का मुँह भी मीठा न करा सकी।

लक्ष्मी ने समझ लिया कि इस घर में जगह बनाने में कुछ समय लगेगा। माँ के सरल व्यवहार के कारण उसे पूरा विश्वास हो गया कि यथासमय उसे अपना अधिकार, स्नेह और प्यार अवश्य मिलेगा।

धीरे-धीरे कुछ समय और बीता। लक्ष्मी के पाँव भारी हो गए। डॉक्टर ने उसे विशेष रूप से आराम करने के लिए कहा। मयंक को चिंता हुई कि किसे सहायता के लिए बुलाए? मन में आया कि माँ के पास जाकर अपनी परेशानी से उन्हें अवगत कराएगा तो वह निश्चय ही उसके प्रति द्रवित हो उठेंगी। लक्ष्मी को भी ठीक लगा। वह भी साथ जाने को तैयार हो गई।

घर पहुँचे तो बाहर पड़ोसी और मयंक का मित्र राजन मिल गया। उसने कहा—“अच्छा हुआ मयंक तुम आ गए। पिछले कई दिनों से आंटी अस्वस्थ चल रही हैं। उनकी देखभाल में अंकल अकेले परेशान होते हैं। उन्होंने कई बार दवा आदि लेने मुझे भेजा है।”

“तुम मुझे एक फोन तो कर देते, मैं पहले ही आ जाता।” मयंक ने उससे शिकायत की।

“सॉरी...अब ध्यान रखूंगा। अब जाओ आँटी को देखो।” कहकर राजन अपने घर की तरफ बढ़ गया।

लेकिन वहाँ माँ को देखने और तीमारदारी करने की बात तो दूर रही, अमरेंद्र ने उन्हें घर के अंदर कदम भी नहीं रखने दिया। बाहर ही खड़े पुत्र और पुत्रवधू से उन्होंने कहा—“मैंने पहले ही कह दिया है कि तुम दोनों के लिए मेरा दरवाज़ा हमेशा के लिए बंद हो चुका है। तुम जा सकते हो।”

अस्वस्थ माँ को देखने के लिए उसने पिता के समक्ष हाथ जोड़कर अनुनय-विनय की, लेकिन अमरेंद्र का पाषाण हृदय द्रवित नहीं हुआ। दुखी और निराश पति-पत्नी लौट आए। लक्ष्मी को भी पीड़ा पहुँची। वह समझती थी कि उसी के कारण आज मयंक अपने माँ-बाप से अलग है। पर अब ईश्वर के सहारे उस सुदिन की प्रतीक्षा में थी जब सब कुछ सामान्य होकर परिवार एक हो जाएगा।

अन्य कोई साधन न देखकर मयंक फ़ोन द्वारा राजन से माँ का समाचार ले लेता। राजन ने उसे धैर्य बँधाया तुम चिंता मत करो, मैं आँटी की देखभाल कर लेता हूँ। लगभग एक सप्ताह बाद जब राजन ने माँ के स्वस्थ होने की शुभ सूचना दी तब मयंक और लक्ष्मी के परेशान मन को चैन मिला।

घर के काम के लिए लक्ष्मी ने एक बारह-चौदह वर्ष की लड़की मीनू को रख लिया। जिससे उसे डॉक्टर के निर्देशानुसार आराम मिल जाता। उधर फिलहाल माँ की तरफ से मयंक ने आशा छोड़ दी थी। अभी लक्ष्मी के प्रसव के लिए भी काफी समय था। अतः उसने सोचा जब समय करीब होगा, तब एक बार पुनः माँ को लाने का प्रयास करेगा।

चंद दिनों पश्चात अचानक एक दिन संध्या समय वसुंधरा अपने पड़ोस के एक लड़के के साथ घबराई हुई मयंक के पास आयी। मयंक को आश्चर्य हुआ। सहसा अपनी आँखों पर विश्वास नहीं हो रहा था, पर माँ सामने बैठी थी। अविश्वास का प्रश्न ही कहाँ था? माँ का चरण-स्पर्श कर सम्मान के साथ बिठाते हुए मयंक ने पूछा—“क्या बात है माँ सब कुशल तो है?”

“नहीं बेटे, कल रात अचानक तेरे पिताजी को दिल का दौरा पड़ गया। राजन तथा मनोज की मदद से अस्पताल में भरती कर आयी हूँ। अभी खतरे

से बाहर नहीं है। मेरा जी घबरा रहा है। चल, अब तेरे और बहू के बिना मैं कुछ भी कर सकने में असमर्थ हूँ।” वसुंधरा की आँखों से अश्रुओं की धार बह चली।

मयंक उन्हें सांत्वना देता हुआ बोला—“आप बिलकुल परेशान न हो माँ। हम सब कुछ सँभाल लेंगे और पिताजी शीघ्र स्वस्थ होकर घर आ जाएँगे।” लक्ष्मी ने माँ को पानी पिलाया और शीघ्र ही दोनों माँ के साथ चल दिए।

समय सीमा को पार करने से पूर्व ही डॉक्टर के अथक प्रयास और भगवान की कृपा से अमरेंद्र खतरे की स्थिति से बाहर आ गए। वसुंधरा, मयंक और लक्ष्मी जैसे गहरी चिंता से उबर गए हों। उन्हें अपार सुख व राहत की अनुभूति हुई। पंद्रह दिन अस्पताल में रहने के बाद अमरेंद्र घर आ गए। यद्यपि अभी डॉक्टर ने आराम व परहेज के साथ अन्य कई सावधानियाँ बरतने की पूर्ण हिदायत दी थी। बेटे-बहू के आने और उनके द्वारा अपने पिता की पूरी देखभाल, सेवा व तीमारदारी का भार अपने ऊपर ले लेने से वसुंधरा को ऐसा प्रतीत हुआ जैसे उसके कटे हाथ-पाँव फिर से जुड़ गए हों।

अपनी गंभीर अस्वस्थता में अस्पताल में तथा उसके बाद घर में मयंक व लक्ष्मी द्वारा पूर्ण सेवाभाव, लगन-निष्ठा व आत्मीयता से की गई सेवा और तीमारदारी के बारे अमरेंद्र जान चुके थे। यह भी समझ में आ गया कि यदि ये दोनों बच्चे समय पर न आते तो अकेली वसुंधरा भला क्या कर सकती थी।

अपनी अस्वस्थता के बावजूद अमरेंद्र अपने मन में उठते भावों पर नियंत्रण न कर सके। अनाथ आश्रम की लड़की जब पुत्रवधू के रूप में उनके दरवाजे के चौखट पर आकर खड़ी हुई थी तो उसे स्वीकार करने की बात तो दूर रही कितनी बुरी तरह से तिरस्कृत करके वापस लौटा दिया था। क्षमा माँगने के लिए बार-बार आते बच्चों से कभी सीधे मुँह बात भी नहीं की। आखिर उनकी गलती ही क्या थी? यही न कि मयंक ने अपनी पसंद की लड़की से विवाह किया। हमने यह जानने की कोशिश नहीं की कि वह लड़की कितनी शिक्षित और सुशील है। यह ज़रूर देखा कि वह

अनाथ आश्रम की है और हम उसे बार-बार अपमानित करते रहे। जिस समाज और संबंधियों के कारण हमने अपने बेटे-बहू को अपने से पृथक् कर दिया, आज वही लोग मेरी अस्वस्थता में झाँकने भी नहीं आए। अमरेंद्र का मन-मस्तिष्क पश्चाताप की पीड़ा व ग्लानि से मथता रहा। इस मंथन ने उनके दिल-दिमाग और आँखों के आगे छाए ऊँच-नीच और जाति-धर्म के पाखंड को छाँट दिया। पश्चाताप की पीड़ा उन्हें शूल की तरह भेदने लगी। मयंक को अपने पास बुलाकर उन्होंने मद्धिम आवाज़ में कहा—“बेटे, मैं अपने स्वभाव और आचरण पर बहुत शर्मिंदा हूँ। आज तुम्हारी और बहू की सेवा से मैं...” मयंक ने उन्हें आगे बोलने से रोक दिया। उसने पिता के मनःस्थिति का अनुमान सहज की लगा लिया था। उनके स्वास्थ्य के लिए अधिक सोचना या तनावग्रस्त होना नुकसान देय हो सकता है। अतः वह सँभलकर बोला—“पिताजी, ऐसा आपने कुछ नहीं किया। हमने जैसा किया था उस स्थिति में हर माता-पिता की वही प्रतिक्रिया होती। इसलिए आप अपने मन में कोई ग्लानि या तनाव वाली बात न रखिए। जो कल था वह अच्छा था लेकिन जो आज है अति सुंदर है।” पिता की बात को बीच में ही रोककर मयंक ने कहा।

अमरेंद्र ने लक्ष्मी को भी अपने पास बुलाकर उसके सिर पर हाथ रखकर आशीर्वाद देते हुए कहा—“बहू, तुम तो सचमुच मेरे घर की लक्ष्मी थी, हम ही तुम्हें पहचान न सके।” अपने हृदय की व्यथा लक्ष्मी के समक्ष उजागर करके उन्हें शांति मिली। लक्ष्मी ने श्रद्धाभाव से श्वसुर के चरणस्पर्श किए और संतुष्ट मन से सोचती रही—उसकी तपस्या सफल हुई जो पिताजी पूर्णतः स्वस्थ हो गए और वह अपने परिवार में अपना स्थान बना सकी। करीब बैठी वसुंधरा अपने परिवार के संगम का मनोहर दृश्य देख रही थी। उसकी आँखों से सुख-दुख से मिश्रित अश्रुओं की धार बह चली। हर्ष का कहीं आदि अंत नहीं था। उसका उजड़ा नीड़ फिर से जो बस गया था।

वैलेंटाइंस डे

डॉ. यशार्थ को वैलेंटाइंस डे की प्रतीक्षा उत्सुकता से थी। अभी दो दिन शेष थे लेकिन उन्होंने उस दिन का पूरे दिन का कार्यक्रम बना लिया था।

अपने बनाए कार्यक्रम के अनुसार वैलेंटाइंस डे पूरा का पूरा इन्ज्वॉय करते बीत गया। दोनों बच्चे पायल और वेद ने भी घूमने-घामने और बाहर ही खाने-पीने का पूरा आनंद उठाया। संध्या समय बच्चों और माता-पिता को घर छोड़कर यशार्थ पत्नी कंचन के साथ रोमांटिक मूवी देखने चले गए।

रात्रि में कंचन लेटी तो अत्यधिक थकान के बावजूद आँखों से नींद कोसों दूर थी जबकि शेष सभी को लेटते ही नींद ने अपने आगोश में ले लिया था। कंचन बार-बार इत्मीनान से सो रहे यशार्थ के चेहरे की तरफ देखती। वैलेंटाइंस डे पर उनकी विचारधारा कैसी परिवर्तित हो गई। यही नहीं इस दिन का जबरदस्त विरोध करने वाले उसके पति को यह दिन कितना प्रिय हो गया। होता भी क्यों नहीं...कंचन के मन ने स्वयं स्वीकारा...यह दिन उनके जीवन में अटूट धागे-सा जुड़ जो गया है...उनको प्राप्त पुनर्जीवन का स्वागत करने वाला खुशनुमा दिन जो बन गया। गंभीर घटना होते हुए भी कंचन के चेहरे पर मुस्कराहट तैर गई और यशार्थ के चेहरे पर दृष्टि टिकाए वह अपने बीते दिनों को याद करने से रोक न सकी।

उसे अच्छी तरह से याद है कि जबसे उसने अपनी सहेलियों और सहपाठी लड़कों से वैलेंटाइंस डे के बारे में सुना था तभी से उसे यह दिन बहुत अच्छा लगने लगा था। हर वैलेंटाइंस डे की प्रतीक्षा वह बड़ी उत्सुकता से करती और वह दिन आने पर अपनी सहेलियों व ब्वॉयफ्रेंड संचित तथा अन्य सहपाठियों के साथ दिनभर के लिए इन्ज्वॉय करने को निकल पड़ती। जुहू बीच पहुँचकर तो उन सबके आनंद की सीमा न रहती। खाते-पीते,

खट्टी-मीठी बातचीत एवं गप्पों के साथ पूरा दिन बीत जाता। लेकिन जबसे उसकी शादी हुई उसके लिए इस दिन को ग्रहण सा लग गया...सारा का सारा मजा ही किरकिरा हो गया, क्योंकि उसके पति यशार्थ इस वैलेंटाइंस डे को बिलकुल पसंद नहीं करते...बल्कि इस दिन के प्रति उनमें अरुचि और नफरत की भावना भरी थी।

कई बार उसने यशार्थ से जानना भी चाहा—“सच बताना यशार्थ, तुम वैलेंटाइंस डे को क्यों पसंद नहीं करते? इसका कुछ विशेष कारण है क्या?” पर हर बार यशार्थ ने बिलकुल सहज-सा जवाब दिया—“विशेष कारण तो कुछ नहीं है...बस मुझे अंग्रेजों की यह मायाजाल जैसी परंपरा बिलकुल बेवकूफी ही लगती है।” सुनकर कंचन चुप रह जाती...बहस करने की उसकी आदत न थी।

उसकी शादी के बाद जब पहला वैलेंटाइंस डे आया तो प्रातः से ही उसकी सहेलियों और सहपाठियों के फ़ोन घनघना उठे। शाम के समय कहीं बाहर घूमने-फिरने के विचार से कुछ सहेलियाँ और सहपाठी घर पर भी आ गए। लेकिन यशार्थ ने सबसे स्पष्ट शब्दों में कह दिया—“मुझे अंग्रेजों के ढर्रे का यह चोंचला बिलकुल पसंद नहीं। आप लोग आ गए हैं तो घर में ही बातचीत और गपशप के साथ, ठंडा-गरम व अन्य पकवानों का आनंद उठाइए।” यशार्थ की बात सुनकर कोई कुछ नहीं बोला। घंटे दो घंटे कंचन के साथ व्यतीत कर सब वापस चले गए। कंचन को बुरा तो बहुत लगा लेकिन मन मसोस कर रह गई।

डॉक्टरी पढ़ने के मध्य भी यशार्थ के साथी उसे इस दिन का महत्त्व समझाते हुए कहते—“तुम समझते क्यों नहीं यशार्थ, यह दिन हम युवा दिलों की धड़कन और जान है। मुद्दत से बिछड़े भी इस दिन मिलने का प्रयास करते हैं और कभी-कभी तो किस्मत उन बिछुड़ों को इसी दिन मिला भी देती है।”

लेकिन साथियों की बात और दलील का यशार्थ पर कोई असर नहीं होता। बाद में सब उसे समझ गए थे अतः कहना ही बंद कर दिया था।

एम.बी.बी.एस. करने के बाद यशार्थ ने अपनी इच्छा से सरकारी नौकरी नहीं की। अपना क्लिनिक खोला जिसमें सुबह-शाम मरीज देखते। इसके

अतिरिक्त शहर में दो तीन दवाखानों व अस्पताल में भी समय देते। एक परमार्थ सेवा-केंद्र नाम का छोटा अस्पताल था जिसमें निर्धन और बेसहारे व्यक्तियों का मुफ्त इलाज किया जाता था। यशार्थ वहाँ भी मरीज देखने जाते। सब जगह से निवृत्त होकर डॉ. यशार्थ लगभग ग्यारह बजे रात्रि तक घर आ पाते। कंचन तब तक उनकी प्रतीक्षा करती रहती...उनके आने के बाद ही रात्रि का भोजन होता।

इसी प्रकार तीन-चार वर्ष बीत गए। संयोग से चौथे वर्ष वसंत पंचमी के दिन ही वैलेंटाइंस डे पड़ा और उसी दिन कंचन ने एक सुंदर-सलोने पुत्र को जन्म दिया। कंचन को अब पूरा विश्वास हो गया कि यशार्थ की नज़रों में उस दिन का महत्त्व बढ़ जाएगा। लेकिन ऐसा कुछ नहीं हुआ...यशार्थ के कथनानुसार हिंदू और हिंदी मान्यता के अनुसार वसंत पंचमी के दिन बेटे का जन्मदिन मनाया जाने लगा जिसमें वैलेंटाइंस डे की कोई झलक भी नहीं मिलती। कंचन ने समझ लिया उसके परिवार के लिए वैलेंटाइंस डे का कोई महत्त्व नहीं है।

समय बीतता रहा। अब वैलेंटाइंस डे के आने-जाने की खबर से कंचन ने भी मुँह मोड़ लिया...जिस दिन को उसके पति पसंद नहीं करते। उसे वह अकेली क्यों महत्त्व दे...सोचकर। लेकिन एक दिन एक हादसे ने सबके दिल को दहला दिया..। दाँतों को बजा देने वाली जनवरी माह की कड़कड़ाती ठंड थी। डॉ. यशार्थ ग्यारह बजे रात्रि में परमार्थ अस्पताल से निपटकर अपनी गाड़ी से घर के लिए चल पड़े। अभी वह चौराहे तक ही पहुँच सके थे कि कुछ अराजक तत्व अस्त्र-शस्त्र से युक्त उनकी गाड़ी रोककर खड़े हो गए। जब तक डॉ. यशार्थ कुछ समझ पाते वह अपहरणकर्ताओं के चंगुल में थे।

इधर जब साढ़े ग्यारह बजे तक यशार्थ घर नहीं पहुँचे तब कंचन ने परमार्थ सेवा केंद्र में फ़ोन किया...पता चला वह ग्यारह बजे ही वहाँ से निकल गए हैं। यशार्थ के बड़े भाई कमल तुरंत गाड़ी लेकर परमार्थ की तरफ़ चल पड़े। चौराहे पर ही यशार्थ की खाली गाड़ी खड़ी थी। जिसमें एक छोटा सा पर्चा लिखा हुआ पड़ा था...“हम डॉक्टर यशार्थ को ले जा रहे हैं...हमें इनकी ज़रूरत है।”

कंचन का तो रोते-रोते बुरा हाल था। सभी रिश्तेदार, परिचित और शुभचिंतक यशार्थ की खोज में लग गए। पुलिस अलग से हाथ-पैर मार रही थी...पर कहीं उनका कोई सुराग नहीं मिल रहा था। धीरे-धीरे दस ग्यारह दिन निकल गए लेकिन डॉक्टर यशार्थ का कुछ पता न चल सका। मानसिक पीड़ा और अंतर्द्वंद्व में फँसी कंचन समझ नहीं पा रही थी कि क्या करे? यशार्थ का पता कैसे चले?

जनवरी के प्रथम सप्ताह में डॉक्टर यशार्थ अगुआ किए गए थे...अब लगभग एक माह होने को हो रहा था...यशार्थ का पता न चलने के कारण परिवार के सभी सदस्य दुखी, चिंतित और परेशान थे कि अचानक एक फ़ोन आया 14 फरवरी को 25 लाख रुपये लेकर संध्या छह बजे फ़लों स्थान पर आ जाइए। हम डॉक्टर को सुरक्षित मुक्त कर देंगे। कोई चालाकी करने की कोशिश की तो अंजाम अच्छा नहीं होगा।

पैसे का प्रबंध करने में एक सप्ताह का समय लग गया। यशार्थ के भाई कमल अपने दो-तीन विश्वासी लोगों के साथ निश्चित स्थान पर निर्धारित समय पर पहुँच गए। अपने कथनानुसार अपहरणकर्ताओं ने बिना अटैची लिए ही डॉक्टर यशार्थ को उनके हवाले कर दिया।

डॉ. यशार्थ की आँख पर पट्टी बँधी थी लेकिन वह पूर्ण रूप से स्वस्थ थे। एक कागज का टुकड़ा अपहरणकर्ता कमल के हाथ में पकड़ा गए थे...जिस पर लिखा था—डॉ. यशार्थ एक नेक इंसान है। उन्होंने मेरे बेटे की जान बचाई है...मैं उनका ऋणी बन गया हूँ, अतः बिना फिरौती की रकम लिए ही उनको सुरक्षित मुक्त कर रहा हूँ।

यशार्थ घर आ गए। अपने बच्चों, कंचन व उन सभी प्रियजनों से सहर्ष मिले जो बड़ी उत्सुकता से उनके आने की प्रतीक्षा कर रहे थे। देर रात तक बातचीत का दौर चलता रहा। सबने साथ-साथ भोजन किया। यशार्थ को ऐसा प्रतीत हुआ जैसे मुद्दत बाद उनको यह सुअवसर नसीब हुआ है...सोचकर उनके नेत्र सजल हो आए।

हठात कमल ने स्मरण दिलाते हुए कहा—“यशार्थ तुमको पता है आज कौन-सा दिन है...जिसने तुमको हम लोगों से और हमें तुमसे मिलने का सुखद सौभाग्य प्रदान किया।”

यशार्थ की समझ में कुछ नहीं आया...तभी उनकी प्यारी सी नहीं बिटिया पायल बोल पड़ी—“आज तो वैलेंटाइंस डे है पापा। कितना अच्छा दिन है कि हमारे पापा हमारे पास आ गए।” बेटी की तोतली बात सुन कर यशार्थ मुस्करा पड़े...उन्होंने उसे प्यार से गोद में ले लिया। कंचन ने देखा आज वैलेंटाइंस डे पर बिना कोई विरोध भाव न प्रकट कर यशार्थ मुस्कराए और इस दिन की महत्ता को स्वीकार करते हुए बोले—“अब इस वैलेंटाइंस डे के लिए मुझे बस इतना कहना है कि आज तक मेरी प्रतीक्षा में इस दिन ने आँखें बिछा रखी थीं। कल से हम इस दिन का स्वागत हर्ष, उत्साह और धूमधाम से करेंगे।”

डॉ. यशार्थ के कथन के साथ ही जोर-से तालियों की गड़गड़ाहट गूँज उठी। वैलेंटाइंस डे ने यशार्थ पर अपनी विजय की रुपहली छाप अंकित कर दी थी।

बँटवारा

रात्रि में भोजनोपरान्त उमापति को अपने कमरे में जाकर लेटे हुए एक घंटा बीत गया था, पत्नी रसोई घर में बाकी बचा काम समेट रही थी। आज ही होली पर आए उमापति के दोनों बेटे तरुण और वरुण अपने-अपने परिवार के साथ वापस गए हैं। आठ-दस दिन बच्चों के रहने से घर में दुगनी रौनक छा गई थी। रंगीन पर्व पर बच्चों के साथ ने सोने में सुहागा जैसा कर दिया। लेकिन उनके जाते ही सन्नाटे ने फिर घर में पाँव पसार लिया। तरुण और वरुण तो उन लोगों को अपने साथ ले जाना चाहते थे लेकिन...

उमापति अपने को अतीत में विचरण करने से न रोक सके।

वह और उनकी पत्नी उमा डिग्री कॉलेज में साथ-साथ बी.एस.सी. कर रहे थे। उनके कॉलेज में सह-शिक्षा प्रणाली थी। यह नियम जरूर था कि लड़कियाँ आगे बैठें और लड़के उनके पीछे की सीटों पर। विभा, रमा और उषा उमा की प्रिय सहेलियाँ थी। वैसे तो उसकी तीनों सहेलियाँ सुंदर थीं लेकिन उमा सौंदर्य की साक्षात् प्रतिमा थी। जिस कारण कॉलेज में वह ब्यूटी क्वीन के नाम से चर्चित थी। उमा सीधी, सरल स्वभाव की होने के साथ-साथ अध्ययन में भी कुशाग्र बुद्धि थी। स्वयं उमापति भी लंबे व सुंदर थे। उमा पर उनकी नज़र बहुत पहले से थी। अभी जबकि पढ़ने और कैरियर बनाने का ही समय था, फिर भी वह स्वयं को सोचने से रोक नहीं पाते थे। काश अपने नाम के अनुरूप वह उमा के पति बनने का सौभाग्य प्राप्त कर लेते। अपनी इस आंकाक्षा को उमापति ने कभी प्रकट नहीं होने दिया और न ही कभी उमा के साथ किसी प्रकार की छेड़खानी अथवा बदतमीजी की। बस जब अवसर मिलता अपने मूक एवं एक तरफ़ा प्रणय को दिल में संजोए उसे जी भर कर देख लेते।

लेकिन एक दिन वह अपनी शराफत से थोड़ा डिग गए। दरअसल क्लास शुरू होने से पूर्व प्रोफेसर अटेंडेंस अवश्य लेते। संयोग भी कुछ ऐसा था कि रजिस्टर में नामों के क्रम में उमा के ठीक बाद उमापति का ही नाम आता। नाम बोलने पर हर दिन शांत बैठे उमापति उस दिन अपने को रोक न सके। उमा के बाद जैसे ही उमापति का नाम आया। वे मुस्कराते हुए शान से खड़े हो गए और अपनी छोटी-छोटी मूँछों पर हाथ फेरते हुए सगर्व उमा की तरफ इस तरह देखा जैसे कह रहें हों कि तुम जैसी सुंदर लड़की का पति अपने नाम के अनुरूप मैं ही हो सकता हूँ। पूरी क्लास उनकी इस हरकत पर मुस्करा पड़ी। उमा चिढ़ गई। अपनी सहेली विभा के साथ उसने उमापति को आड़े हाथों लिया था। “यह क्या बदतमीजी है...अटेंडेंस तो रोज़ होती है लेकिन आज आपने ऐसी गंदी हरकत क्यों की। मुझे क्लास में झेंपना पड़ा।”

उमापति ने अत्यंत सहज भाव से कहा—“सॉरी, उमा जी, नाराज मत होइए। एक लंबे समय से मैं आपको चुपचाप देखता चला आ रहा हूँ। मैंने बहुत बारीकी से अपने दिल को टटोला...परखा...लेकिन वह तो सचमुच आपका हो चुका। सीधे ढंग से आपको बताने में मेरी हिम्मत जवाब दे गई...इसलिए...”

“अच्छा, अपने प्रणय को प्रकट करने का यही भद्दा तरीका आपने चुना।” उमापति की बात को बीच में ही काटकर उमा ने तीखे शब्दों में कहा।

उसकी बात पर ध्यान न देकर उमापति ने पुनः अत्यंत सरल व सहज भाव से कहा—“अब ऐसी गलती कभी नहीं होगी...बस मुझे आपके प्रति अपने प्यार का इजहार करना था। आप यह कभी नहीं भूलेंगी कि आपका प्यार मेरी जिंदगी है।” कह कर बिना उत्तर की प्रतीक्षा किए उमापति आगे बढ़ गए।

ये सब तो कॉलेज के दिनों की बातें थीं...लेकिन बाद में संयोग भी कुछ ऐसा बना कि उमापति की चाहत बहुत सुंदर ढंग से पूर्ण हो गई। एम.एस.सी. का अध्ययन पूर्ण होने से पूर्व ही उमापति का चुनाव प्रशासनिक प्रांतीय सेवा के लिए हो गया। अपना पक्ष मजबूत होते ही वह उमा के माता-पिता के समक्ष अपना प्रस्ताव लेकर पहुँचे। सजातीय होने के साथ-

साथ सम्माननीय सरकारी नौकरी...सबसे बड़ी बात अपने से ही आया इतना अच्छा प्रस्ताव भला उमा के माता-पिता को क्यों न स्वीकार होता? शादी तय हो गई।

शुभ दिन देखकर हर्ष-उल्लास और धूमधाम से विवाह भी संपन्न हो गया। इस सुखद सत्य पर उमापति हर्ष से विभोर थे। पढ़ने के दिनों में तो वह मन ही मन उमा के दीवाने हो गए थे पर उचित समय की प्रतीक्षा में इससे पूर्व कोई पहल नहीं की थी। अब उमापति ने रसिक भाव से मुस्कराते हुए कहा—“देखो मैं कितना सच कहता था कि तुम जैसी सुंदर लड़की का पति मैं सिर्फ नाम से ही नहीं बल्कि...”

“अच्छा बस करो...मैं समझ गई...तुम्हारी केवल जुबान पर ही नहीं अपितु मन में भी सरस्वती वास कर गई थीं, जो तुमने मुझे, प्राप्त कर लिया...अन्यथा मुझे तुमसे अच्छा ही पति मिलता।” मुस्कराती हुई उमा ने जवाब दिया।

“ओह मैं भी कैसा मूर्ख था...जो इतनी जल्दबाजी कर दी, वरना मुझे भी तुमसे लाख गुनी अच्छी लड़की मिलती।” उमा की बात पर उमापति ने ठिठोली की।

“वाह...खूब कहा आपने...मैंने क्या देखा नहीं कि कॉलेज में कोई भी लड़की तुम्हें घास नहीं डालती थी?” उमा ने हँसते हुए उत्तर दिए।

“मैंने कहा न कि मैं अपने को शिव समझकर पार्वती का दीवाना हो गया था। किसी के घास डालने अथवा न डालने की परवाह ही कहाँ थी।” कहते हुए उमापति ने उमा का हाथ अपने हाथों में ले लिया।

अपनी प्रेयसी को पत्नी के रूप में प्राप्त कर उमापति का जीवन बहुत ही लुभावने तरीके से व्यतीत हो रहा था। उमा भी पति के प्यार की बरसात से तर-बतर थी। पाँच वर्ष तक विवाहित जीवन को अति आनंद के साथ व्यतीत करने के बाद उमा का आंचल तरुण-वरुण नामक दो फूल से जुड़वा बच्चों से खिल उठा। बच्चों की देखभाल और परवरिश में उमा अब इतना अधिक व्यस्त रहती कि पति के लिए भी समय निकालना मुश्किल हो जाता था...लेकिन उमापति को पत्नी से कभी कोई शिकायत न रहती।

उमा अपने छोटे से परिवार में बहुत खुश व संतुष्ट थी। दोनों बच्चों की परवरिश भी अच्छी तरह से होती रही। बच्चे कुछ बड़े हुए तो उन्हें अच्छे अंग्रेजी स्कूल में डाल दिया गया। उमा के सास-श्वसुर भी साथ में रहते थे...जिस कारण बच्चों की देखभाल में उमा को काफी मदद मिल जाती। बच्चे तरुण-वरुण तो अपने बाबा-दादी के साथ बातें करके और उनसे कहानी सुनकर बहुत मस्त रहते। दोनों पति-पत्नी अपने माता-पिता का पूरा ध्यान रखते। रंचमात्र भी अस्वस्थता का आभास होता तो उमा और उमापति दोनों उनकी सेवा व देखभाल में रात-दिन एक कर देते। उमापति के छोटे भाई देवपति ने माता-पिता को अपने पास ले जाने की आकांक्षा कई बार व्यक्त की। लेकिन उनके गरम व रूखे स्वभाव को उमापति अच्छी तरह जानते थे इसलिए कुछ न कुछ बहाना करके भाई की बात हमेशा टाल देते।

उमापति अपने सरकारी कार्यों के प्रति पूर्ण निष्ठा एवं ईमानदारी की भावना रखते। इस कारण जहाँ भी जाते उनकी भूरि-भूरि प्रशंसा होती। सरकारी कार्य को जिम्मेदारी के साथ करने के कारण वह सरकार द्वारा सम्मानित किए गए। इस उपलक्ष्य में उन्हें प्रमोशन के साथ स्थानांतरण करके ए.डी.एम. की पोस्ट पर आगरा नियुक्ति मिली।

आगरा आने पर समय निकालकर उमापति ने अपने वृद्ध माता-पिता को वृंदावन व मथुरा के सभी मंदिरों में दर्शन कराए। घूमने और दर्शन करने के पश्चात माँ ने अत्यंत संतुष्ट मन से कहा—“बेटे, तुमने हमारी सारी साध पूरी कर दी अब तो बस एक ही आकांक्षा और शेष है...हम दोनों को भगवान इतना जीवन और दे दें कि हम अपने पौत्र की शादी अपनी आँखों से देख लें।”

उमापति ने उन्हें धैर्य बँधाते हुए कहा—“वह शुभ दिन भी जरूर आएगा माँ जब तरुण-वरुण की बहुओं को आप अपने हाथों डोली से उतारेंगी...उनकी भी किस्मत खुल जाएगी माँ, आप दोनों का आशीर्वाद पाकर।” सुनकर माँ का मन तृप्त हो गया।

भगवान ने शायद उनकी सुन भी ली। तरुण-वरुण का अध्ययन लगभग पूर्ण हो गया। बड़े तरुण का चुनाव बैंक के प्रोवेशनरी ऑफिसर के लिए हो गया। जबकि वरुण इंजीनियरिंग का कोर्स करने के बाद बंगलौर में कंप्यूटर की सॉफ्टवेयर कंपनी में इंजीनियर बन गया।

जैसे ही दोनों को नौकरी मिली उमापति की माँ ने अत्यंत हर्षित होकर कहा—“देखो हम कितने भाग्यशाली हैं जो अपने पौत्रों की नौकरी लगने का शुभ दिन देख सके। लेकिन अब इनकी शादी कर दो बहू ताकि हमारी आखिरी तमन्ना भी पूरी हो जाए।”

उमा और उमापति ने अपने माता-पिता की आकांक्षा का पूर्ण सम्मान किया। अच्छे घर-परिवार की सुंदर व सुशील लड़कियाँ देखकर तरुण-वरुण की शादी संपन्न कर दी गई। दादा-दादी ने खुशी से विभोर होते हुए पौत्रों की शादी का आनंद उठाया। मनौतियों की जो लाइन लगा रखी थी दादी माँ ने उन सबको बारी-बारी करके पूर्ण किया...उमापति जैसा बेटा पाकर उसके माता-पिता हर्षित होने के साथ गर्वान्वित भी थे।

समय बीतता गया...किसी के माँ-बाप की छाया हमेशा सिर पर नहीं बनी रहती। सभी सुख भोगकर और अपनी आकांक्षाएँ पूर्ण कर उमापति के माता-पिता ने नश्वर संसार से विदा ली।

नौकरी की अवधि पूर्ण कर उमापति ने अवकाश ग्रहण किया और लखनऊ आ गए। इस समय केवल पत्नी उमा ही साथ थीं। अत्यंत ईमानदारी से नौकरी करने के कारण वह अधिक पैसा नहीं जोड़ सके थे...फिर भी जितनी सामर्थ्य थी उससे लखनऊ में एक छोटा फ्लैट ले लिया था। थोड़ा बहुत जमा किए पैसों तथा पेंशन की राशि से वह जब तब दोनों बेटों को आशीर्वाद स्वरूप कुछ न कुछ देते रहते थे।

तरुण और वरुण अपनी सुविधानुसार माता-पिता के पास आते-जाते रहे। जब इच्छा होती उमा और उमापति भी बेटे-बहू के पास कुछ दिनों के लिए रह आते। दशहरे, दीपावली के अवकाश में तरुण और वरुण दोनों ही अपने-अपने बच्चों के साथ घर आ जाते।

एक-एक कर ग्रीष्म, वर्षा और शरदऋतु बारी-बारी करके आते-जाते रहे...शरद ऋतु के बाद फाल्गुन की मीठी बयार बहनी शुरू हो गई। उमापति ने अपने दोनों बेटों को सूचित कर दिया कि गत वर्षों की तरह इस बार भी होली पर तुम लोगों को आना है। उमा को तो नन्हें-नन्हें, प्यारे-प्यारे बच्चों का साथ बहुत अच्छा लगता। वह तो यही चाहती थी कि यदि एक साथ नहीं तो भी बारी-बारी बेटे यहीं उसके पास रहें...लेकिन नौकरी के कारण ऐसा संभव ही कहाँ था?

अवकाश होते ही तरुण-वरुण अपने-अपने परिवार के साथ माता-पिता के पास आ गए। बच्चों की चहल-पहल से घर में और रौनक छा गई। उमा ने पहले से ही बच्चों के लिए रंग और पिचकारियों का अंबार लगा रखा था। गुझिया-समोसे की खुशबू से घर महक उठा था। दोनों बहुएँ तनूजा और शिल्पा भी हर समय उमा के साथ लगी रहतीं। बहरहाल रंगीन बौछार और खट्टे-मीठे हुड़दंग-उल्लास के साथ प्रतीक्षित होली ने विदा ली।

इस बार घर आने से पूर्व तरुण-वरुण आपस में कुछ योजना बना कर चले थे। अब यहाँ उसे कार्यरूप में परिणत कर देना था। इस विचार से दोनों भाइयों ने एक सप्ताह और रुकने का विचार बना लिया था। इसी उद्देश्य से होली के दूसरे दिन रात्रि में बैठे विचार-विमर्श कर रहे थे। तरुण ने सहज भाव से कहा—“अब इस उम्र में मम्मी-पापा का यहाँ अकेले रहना ठीक और सुरक्षित नहीं है। उन्हें हम लोगों के साथ रहना चाहिए और जब वे लोग हम दोनों के साथ रहेंगे तो यहाँ प्लैट का क्या काम? गाड़ी के बारे में भी सोचना होगा...” थोड़ा विराम देकर तरुण ने पुनः कहा—“एक सप्ताह के अंदर हम गाड़ी और प्लैट दोनों निकाल देंगे और माँ-पिताजी को साथ लेकर...”

“लेकिन भइया...बिना पिताजी से बताए अथवा पूछे कुछ करना क्या उचित होगा?” वरुण ने अपने मन के संशय को प्रकट किया।

“पूछने अथवा बताने पर तो वह कभी तैयार न होंगे। हमारी सारी योजना बेकार हो जाएगी। गाड़ी और प्लैट से मिले पैसे का तीन भाग करके दो हम लोग और तीसरा पिताजी को सौंप देंगे। माँ-पिता जी में एक को तुम रखना दूसरे को मैं। दोनों लोगों का एक साथ हममें से किसी के पास रहना आर्थिक दृष्टि से बोझ बन सकता है। मेरे बच्चे कुछ बड़े हैं—तनूजा भी ऑफिस जाती है। बच्चे स्कूल से वापस घर आते हैं तो कोई देखने वाला नहीं रहता...इसलिए माँ को मैं अपने साथ ले जाऊँगा।” धाराप्रवाह बोलते हुए तरुण ने कहना जारी रखा—“तुम्हारे बच्चे छोटे हैं और शिल्पा भी घर पर ही रहती है...अतः पिताजी का तुम्हारे साथ जाना ठीक होगा...इसी हिसाब से मैंने अपने टिकट में माँ का और तुम्हारे में पिताजी का आरक्षण भी करा दिया है। टिकट माँ से अलमारी में सुरक्षित रखवा दिए हैं।” बिना विवाद

वरुण बड़े भाई की बात और तैयारी से सहमत हो गया। अपनी बात पूरी करके दोनों अपने-अपने कमरे में सोने चले गए।

संयोग से रात्रि में टॉयलेट जाने के लिए उठे उमापति ने अपने बेटों की बातचीत को अच्छी तरह से सुन लिया...फ्लैट और कार को बेचने का इरादा, इनसे मिले पैसों का तीन भाग करना, माँ-बाप का बँटवारा करके एक-एक को रखना, उसी के अनुसार रिजर्वेशन का टिकट बनवा लेना, उमापति की समझ में सब कुछ आ गया। उनको आघात-सा लगा। रातभर नौद नहीं आई...मन-मस्तिष्क मथता रहा। जिन बच्चों को उन दोनों पति-पत्नी ने अपना असीमित लाड़-प्यार दिया...उनके मंसूबे जानकर, उनको सदमा पहुँचा।

एक माता-पिता अपने बच्चों की ममता की छाँव में परवरिश करके उन्हें पैरों पर खड़ा होने योग्य बना देते हैं, लेकिन अपने ही बच्चों के लिए माँ-बाप भार बन जाते हैं। उमापति ने दृढ़ता के साथ निश्चय किया...वह अपने को कमज़ोर साबित नहीं होने देंगी...न कार, फ्लैट बिकेगा और न उन लोगों को किसी बेटे के पास जाकर स्थायी रूप से रहना है। यहाँ लखनऊ में उनका अपना स्थायी फ्लैट हमेशा बना रहेगा...सोचते हुए उमापति ने सोने का प्रयास किया।

प्रातः भ्रमण के लिए उठने में उमापति को नित्य की तुलना में कुछ देर हो गई। नित्य क्रिया से निवृत्त होकर उन्होंने पत्नी को जगाकर एक प्याला चाय बनाने को कहा। चाय की चुस्कियाँ लेते हुए उन्होंने उमा से पूछा—“कल तुमको तरुण ने रिजर्वेशन के टिकट रखने को दिया था?”

“हाँ, लेकिन सुबह-सुबह टिकट की याद कैसे आयी?”

“मुझे दे दो, उसमें कुछ सही कराना है।”

“अच्छा लायी।” कह कर उमा ने अलमारी से दोनों टिकट निकाल कर उमापति को पकड़ा दिए। टिकट को जेब में डालकर उमापति बाहर निकल गए।

घर वापस आकर उन्होंने टिकट को अलमारी में यथास्थान रखा और पेपर लेकर पढ़ने बैठ गए। पेपर पढ़ने में आज उनका मन कम लग रहा था। कल रात अपने बेटों की बातचीत और मानसिकता से उन्हें गहरा धक्का लगा था। अपने माता-पिता को उन्होंने उनके जीवन तक पूरा सम्मान और

प्यार दिया। उन्हें लेकर उनके मन में कभी किसी तरह का विकार नहीं आया। जिस तरह माता-पिता जी ने जीवन जीना चाहा...उसी तरह से जिए... सोचते हुए उमापति की आँखें सजल हो आईं। दोनों टिकट से अपना और उमा का नाम हटाकर उन्हें कुछ राहत मिली। आगे भी वह वही करेंगे जो उचित और मन माफिक होगा...सोचकर उमापति ने फिर पेपर पर आँखें टिका दीं।

सभी लोग सुबह नाश्ता करने बैठे। उमापति ने तरुण से सहज भाव से पूछा—“बेटे होली तो हो गई, अब तुम लोगों के जाने का क्या प्रोग्राम है?”

“सोमवार का रिजर्वेशन हो गया है पापा। हमने तय किया है कि इस बार आप लोग भी हमारे साथ चलेंगे। यहाँ अब आप लोगों का अकेले रहना ठीक नहीं है...कभी अस्वस्थता तो कभी कोई परेशानी आ ही जाती है। हम लोगों का बार-बार आना भी संभव नहीं हो पाता।” तरुण ने अपनी प्लानिंग की हलकी झलक दी।

“तुम्हारा कहना ठीक है बेटे, लेकिन अभी हमारा कहीं जाने का कोई विचार नहीं है।” उमापति की आवाज़ दृढ़ थी।

“लेकिन मैंने तो आप दोनों का टिकट करा लिया है।” तरुण ने परोक्ष रूप से संकेत देना चाहा। “हाँ-हाँ, मैं जानता हूँ तुम लोगों ने मेरा फ्लैट व कार निकालने का मन बना लिया है। लेकिन ऐसा करना ठीक नहीं होगा। एक स्थायी निवास का होना ज़रूरी है। अतः फ्लैट निकालने का विचार छोड़ दो...हम दोनों यहीं रहेंगे।” थोड़ा विराम देकर उमापति ने गंभीर आवाज़ में कहा—“अपने स्वार्थ के पीछे तुम लोगों ने सब चीज़ों के साथ माता-पिता का भी बँटवारा करना चाहा...हमें इससे कष्ट पहुँचा है। मैं और तुम्हारी माँ हमेशा यहीं और एक साथ रहेंगे। कभी इच्छा हुई तब घूमने के विचार से तुम लोगों के पास आ जाएँगे। लेकिन इस तरह से घर-द्वार रहित...किसी पर भार बनकर रहना मुझे स्वीकार नहीं है, यहाँ मेरा स्वाभिमान टकराता है। तुम लोगों को जब भी जाना-आना हो खुशी-खुशी आओ और जाओ।” अपना लंबा वक्तव्य देकर उमापति चुप हो गए।

तरुण-वरुण ने समझ लिया कि पिताजी उनकी सारी बातें जान चुके हैं। अपनी गलती स्वीकार कर वे चुपचाप पिता के चरणों में झुक गए।

बड़प्पन

दिवाकर और पार्वती ने बड़े लाड़-प्यार से अपनी इकलौटी बेटी का नाम अपने-अपने नामों का एक-एक अक्षर मिलाकर दीपाली रखा। लेकिन प्यार से उसे दीपा ही बुलाते। बचपन से ही प्यारी-प्यारी सी दिखने वाली दीपाली ने जब कैशौर्य की दहलीज लाँघकर यौवन पर पाँव धरा तो उसका रूप यौवन की छाप पाकर द्विगुणित होकर लहलहाने लगा। दीपा का एम.ए. का अध्ययन भी पूर्ण हो चुका था। अतः अब माता-पिता ने उसकी शादी कर देने का विचार किया। आजकल हो रही शादियों की तुलना में अभी उसकी वय अधिक नहीं थी, लेकिन दिवाकर का मानना था कि सही उम्र में लड़कियों की शादी कर देने से उनके सौंदर्य पर जो निखार आता है...अधिक आयु में शादी होने वाली लड़कियाँ उस निखार से वंचित रह जाती हैं।

बेटी सुंदर थी...दिवाकर भी सब तरह से सक्षम थे, अतः अधिक भाग दौड़ नहीं करनी पड़ी...जल्दी ही शादी तय हो गई। उत्कर्ष लखनऊ में रहते थे। इंजीनियर थे...लगभग पाँच फुट दस इंच लंबे और आकर्षक व्यक्तित्व से पूर्ण। दीपा और उत्कर्ष ने एक-दूसरे को देखते ही पसंद कर लिया। फिर विलंब किस बात की...धूमधाम से उनकी सगाई की रस्म संपन्न हो गई। अत्यंत हर्ष-उल्लास के माहौल में सब कुछ संपन्न हुआ। बस अभी विवाह की तारीख तय नहीं की गई थी।

इस उत्सव के कुछ दिन पश्चात अचानक एक दिन दिवाकर को अपने प्रिय मित्र प्रकाश का पत्र मिला। पत्र पढ़कर सभी लोग अजीब उलझन और ऊहापोह में पड़ गए। प्रकाश ने लिखा था—“मित्र दिवाकर, बहुत दिनों से तुम्हारा कुछ हाल नहीं मिला। विश्वास है सपरिवार स्वस्थ होंगे। तुम्हें याद

होगा कि जब हम नौकरी के शुरू के दिनों में एक साथ रहते थे...तब हमने एक दूसरे से वायदा किया था कि मेरे बेटे से तुम्हारी बेटी दीपा की शादी तय है। आज भी मुझे अपनी बात स्मरण है। बेटी दीपा कैसी है? सौम्य का तो आई.ए.एस. में चुनाव हो गया है। इस शुभ सूचना में एक और शुभ कड़ी जोड़ते हुए मैं सौम्य के लिए तुमसे बेटी दीपा का हाथ माँगता हूँ। सोचता हूँ हमारे इस कदम से हमारी मित्रता की कड़ी और मज़बूत हो जाएगी। पत्र समाप्त करता हूँ...जवाब देना...तुम्हारा मित्र प्रकाश नारायण।”

मित्र के पत्र ने पति-पत्नी को दुविधा और असमंजस में डाल दिया। दीपा की शादी तय हो चुकी थी। उन्हें प्रकाश नारायण से किया गया अपना वायदा याद ही नहीं रहा। लेकिन प्रकाश को स्मरण रहा...और तब भी जबकि उसका बेटा आई.ए.एस. हो गया। प्रशासनिक सेवा का सर्वोच्च प्रतिष्ठित पद पाने के बाद लोगों के पाँव धरती पर नहीं रहते, लेकिन मेरा मित्र तो महान है...मित्रता के तकाजे के साथ स्वयं ऑफ़र किया।

पर अब उसे गंभीरता से सोचना है कि क्या करना होगा? क्या प्रकाश को साफ़-साफ़ बताए कि उसे बिलकुल स्मरण नहीं था और उसने बेटी की शादी तय कर ली है। लेकिन दूसरे ही क्षण अंतर्मन ने विरोध प्रकट किया—“नहीं मित्र को यह बताना ज़रूरी नहीं है।” फिर क्या करना होगा? दिवाकर और पार्वती बड़े धर्मसंकट में पड़ गए। पुनः अंतर्मन ने आई.ए.एस. के पक्ष में सकारात्मक तर्क प्रस्तुत किया। हमारी इकलौती लाडली बेटी है। अगर इतनी आसानी से आई.ए.एस. लड़का मिल रहा है, वह भी अपने मित्र का तो ऐसे में यह रिश्ता छोड़ देना नासमझी ही नहीं...बड़ी भारी मूर्खता होगी। लेकिन तत्क्षण धूमधाम और शोरशराबे के साथ संपन्न, बेटी की सगाई की रस्म भी आँखों के सामने दृष्टिगत होने लगी। उफ़ अब क्या किया जाए? दोनों पति-पत्नी विकट उलझन में पड़ गए।

बहुत ही सीधे व सज्जन हैं सुनील वर्मा व उनका बेटा उत्कर्ष। उन्हें कैसे मना किया जा सकता है? मना करने का मतलब उनको धोखा देना व उनका अपमान करना होगा। उलझन में पड़े पति-पत्नी ने सोचा—दीपा से पूछना और उसकी राय लेना भी उचित होगा।

प्रकाश के पत्र को दीपाली के समक्ष रखा गया। उसने माँ से कहा एक दो दिन में सोचकर बताएंगी। दीपा ने पत्र पढ़ा, मन को कुछ अच्छा-सा लगा। उसने उत्कर्ष को देखा था। पसंद भी किया था। हर तरह से अच्छे हैं और नौकरी भी अच्छी है। घर-परिवार के सदस्य भी अच्छे सरल और सुशिक्षित हैं। लेकिन सौम्य आई.ए.एस. हैं...किसी भी नौकरी से देश के इस सर्वोच्च पद और सम्मानपूर्ण नौकरी की तुलना नहीं की जा सकती है। उसका मन रूपी तुला बार-बार सौम्य और उत्कर्ष को तौलता रहा...कभी सौम्य का पलड़ा भारी हो जाता तो कभी उत्कर्ष का। पद-प्रतिष्ठा, मान-सम्मान और ऐशो-आराम की कल्पना कर दीपाली का मन सौम्य की तरफ खिंचता गया। जो सुख-सुविधा उसे सौम्य के साथ प्राप्त होगी...वह उत्कर्ष के साथ नहीं। वह इंजीनियर है सौम्य जैसे ताम-झाम, ठाठ-बाट उनके यहाँ कहाँ? इसी खींचतान में धीरे-धीरे उत्कर्ष का पलड़ा कब हलका पड़कर ऊपर उठ गया दीपाली को पता नहीं चला। उसने सोचा उत्कर्ष से उसने प्यार तो किया नहीं...यह तो मम्मी-पापा की तय की हुई शादी थी, फिर कोई ठोस कारण बताकर मना कर देने में कुछ हर्ज नहीं है।

बेटी के निर्णय के बाद फिर दिवाकर और पार्वती ने अधिक सोच विचार नहीं किया...झुकाव तो उनका भी सौम्य की तरफ था। अतः मिस्टर सुनील वर्मा के यहाँ कुछ गहन अपरिहार्य कारण बताकर विवाह स्थगित करने की विवशता प्रकट की गई। अतः वहाँ जुड़ने से पहले ही रिश्ता टूट गया।

प्रकाश नारायण का परिवार दिल्ली में था। अतः उन्हें सूचित कर दिवाकर सपरिवार दिल्ली के लिए प्रस्थान कर दिए। वहाँ लगन निकलवा कर पंद्रह दिन के अंदर घूम-धाम से विवाह संपन्न हो गया। योग्यता में धनी होने के साथ-साथ सौम्य देखने में भी सुंदर व्यक्तित्व के थे। दीपाली उनसे विवाह कर प्रसन्न हुई। दोनों परिवार संतुष्ट थे। दीपाली को उत्कर्ष से रिश्ता टूटने का कोई गम नहीं हुआ। बस यदा-कदा दिवाकर ही आमगलानि से भर जाते, जब उन्हें ध्यान आता कि मिथ्या कारण बताकर उन्होंने अत्यंत सौम्य व सज्जन सुनील वर्मा के यहाँ विवाह स्थगित किया पर वह किसी से कुछ कहते नहीं।

दिवाकर के परिवार की यह चतुराई और लोभ भरा निर्णय बहुत दिनों तक प्रच्छन्न नहीं रह सका। कुछ ही समय उपरांत सुनील वर्मा को विदित हो गया कि उत्कर्ष का विवाह किस कारण स्थगित किया गया था। उन्होंने दिवाकर से कोई शिकायत अथवा तकरार नहीं की... चुपचाप अपमान का घूँट पी लिया।

किसी कार्यवश सौम्य विवाहोपरांत तुरंत हनीमून मनाने न जा सके। फिर तो जाने का प्रोग्राम बनते-बनते छह माह बीत गए। जब दीपाली पीछे पड़ी तब सौम्य ने अवकाश लिया। पर शायद यहीं से दुर्भाग्य भी उनके साथ हो लिया। मंसूरी जाने और वहाँ रहने का समय तो खुशी-खुशी बीता लेकिन वहाँ से लौटते समय सौम्य की कार दुर्घटनाग्रस्त हो गई, जिसमें वह गंभीर रूप से घायल हो गए जबकि दीपाली को हलकी चोटें आयीं। ड्राइवर की घटनास्थल पर ही मौत हो गई। किसी तरह कार से बाहर आकर घबरायी बदहवास-सी दीपाली ने सहायता के लिए चारों तरफ देखा। दो-एक गाड़ियाँ आई भी लेकिन रुकी नहीं। शायद कोई व्यर्थ के झंझट अथवा परेशानी में नहीं पड़ना चाहता था।

अचानक विपरीत दिशा से आती एक अधिशासी अभियंता की जीप करीब आकर रुक गई। दीपाली का ढाढ़स बँधा... कोई तो रुका। जीप से इंजीनियर और उनका चपरासी बाहर आए... घटना का जायजा लिया। दुर्घटना की गंभीरता को समझते हुए उन्होंने अविलंब गंभीर रूप से घायल सौम्य को जीप में लादा और दीपाली से बैठने को कहा... दीपाली के चेहरे पर दृष्टि पड़ते ही वह चौंक गए... पर इस समय कुछ पूछने या जानने का समय नहीं था, अतः तुरंत मंसूरी की तरफ चल पड़े।

यह इंजीनियर और कोई नहीं उत्कर्ष ही थे जो अपने सरकारी कार्य से मंसूरी जा रहे थे। उन्होंने सौम्य को अस्पताल में भरती किया। जो कुछ भी दवा, इंजेक्शन, ऑपरेशन आदि आवश्यक हो डॉक्टरों को तुरंत करने की पूर्ण हिदायत व खर्चा दे दिया। डॉक्टर इमर्जेंसी कक्ष में सौम्य के उपचार में लग गए। लेकिन यहाँ उत्कर्ष की भाग-दौड़ और आर्थिक सहायता व्यर्थ चली गई। अधिक रक्त निकल जाने के कारण डॉक्टरों के अथक प्रयास के बावजूद सौम्य को बचाया नहीं जा सका। सौम्य के घर व दीपाली के

यहाँ सूचना भेज दी गई। दीपाली भी एक तरफ अर्धमूर्छित सी पड़ी थी...उत्कर्ष ने डॉक्टर से उसे भी देखते रहने व प्राथमिक उपचार के लिए कह दिया था।

उत्कर्ष को गहरी पीड़ा पहुँची...कम से कम देर सवेर सौम्य ठीक तो हो जाते। पर ईश्वर की इच्छा के आगे मनुष्य विवश है...कुछ कर नहीं सकता। दीपाली और सौम्य के घर से लोगों के आने पर उन्हें सब कुछ बता-समझाकर उत्कर्ष चले गए। यह अवश्य कह गए कि यदि कुछ ज़रूरत पड़े तो इस पते और फोन पर सूचित कर देंगे।

दुर्भाग्य के एक झोंके ने दीपाली का जीवन उजाड़ कर रख दिया। सोचकर दिवाकर बहुत दुखी थे। मन में पश्चाताप की भावना जागृत हुई। उत्कर्ष को तो हमने जानबूझ कर खो दिया और सौम्य को हमसे भगवान ने छीन लिया। बेटी के उदास, उजड़े, जीवन को देखकर दिवाकर को लगा उसे व्यस्त रखने के लिए उन्हें कुछ करना होगा ताकि वह अपनी व्यथा भूली रहे। सौम्य के एक्सीडेंट के बाद वह डेढ़ माह ससुराल में रही। लेकिन इतने हृदय-विदारक हादसे के बाद ससुराल में उसके लिए किसी के मन में कोई सहानुभूति अथवा दर्द नहीं रह गया था। परिवार का हर सदस्य उसे अशुभ समझने लगा। इतना बड़ा असह्य आघात, उस पर से तीर जैसे चुभते शब्द...दीपाली का अंतर्मन बिंध सा जाता...सुनते-सुनते कान पक जाते...वह अपने पिता को बुलाकर मायके आ गई।

समय कभी रुका नहीं है। चाहे खुशियों की शहनाइयाँ बज रही हों अथवा गम के स्याह बादल छाए हों...दीपाली का भी समय बीतता रहा। दिवाकर ने प्रयास करके उसे एक कॉनवेंट स्कूल में अंग्रेजी टीचर की जगह दिलवा दी थी। इससे कुछ व्यस्तता तो आ गई थी, फिर भी दीपाली अपने जीवन में चार दिन के लिए आई बहार को भूल नहीं पाती...कितने सपने सजाकर और कल्पनाओं का स्वर्णिम महल बनाकर वह सौम्य से परिणय बंधन में बँधी थी...पर सब कुछ क्षण भर में देखते-देखते ही बिखर गया...। हठात उसे उत्कर्ष की याद आ गयी...कितनी आत्मीयता से उसने उस अनजान जगह और मुसीबत के समय उसकी सहायता की थी, चाहे परिणाम कुछ भी हुआ हो। इसमें उसका क्या दोष?

दीपाली को यह भी ध्यान में आया कि अब तक उसे उसकी सहृदयता के लिए धन्यवाद भी कहने का स्मरण नहीं आया। कम-से-कम इतना तो उसे कर ही देना चाहिए...सोचते हुए दीपाली ने उत्कर्ष का नंबर डायल किया उधर से उत्कर्ष की आवाज़ आयी। दीपाली ने संकोच पूर्ण शब्दों में कहा—“मैं दीपाली बोल रही हूँ। मुझे दुख है कि मैं आपकी शराफ़त और सहृदयता के लिए अब तक आपको धन्यवाद भी नहीं कह सकी। देर से ही सही...”

“उसकी ज़रूरत नहीं है।” उत्कर्ष ने दीपाली की बात को बीच में ही काटकर कहा—“मैं आपके पति को बचा भी तो नहीं सका...इस कारण आपके सामने आने में मेरी हिम्मत जवाब दे गई थी। आपके कष्ट के प्रति संवेदना प्रकट करने के लिए मेरे पास शब्द भी नहीं थे।”

“अच्छा रखती हूँ...” कुछ और बात न करके दीपाली ने रिसीवर रख दिया।

दीपाली के क्षण दो क्षण के लिए आए फोन से उत्कर्ष को कुछ अच्छा लगा। वह स्वयं उसको फोन करना चाहते थे लेकिन अपने मन से उन्हें पूरा समर्थन नहीं मिला। दीपाली ने उसे ठुकराकर आई.ए.एस. सौम्य के साथ विवाह रचाया था...लेकिन उसे क्या पता था कि भाग्य इतना बड़ा धोखा देगा। अपने जीवन-साथी का साथ छूट जाने से आज वह बेहद दुखी हो गई है...जाने क्यों दीपाली के प्रति उत्कर्ष के मन में गहरी सहानुभूति उमड़ आयी। उसने सोचा...यदि आज वह दीपाली के दुख बाँटने हेतु कुछ कर सका तो उसे आत्म-संतुष्टि की अनुभूति होगी। दीपाली के प्रति मन में यह विचार आने से उत्कर्ष को अपना मन काफ़ी कुछ हलका लगने लगा।

धीरे-धीरे एक वर्ष होने को आ गया। दीपाली उदास उजड़े जीवन में अब काफ़ी कुछ अपने को एडजस्ट कर चुकी थी। यद्यपि सौम्य की याद से वह उबर सकेगी ऐसा उसे लगता नहीं था...जीवन भर का साथ देने का वायदा कुछ महीनों में ही तोड़ कर चल दिया...जो पल-पल उसे सालता रहता था।

दिन भर स्कूल में बच्चों के साथ व्यतीत हो जाता...संध्या समय माता-पिता के पास बैठकर बातचीत में अपने मन को उलझाए रखती...लेकिन

रात्रि जैसे...चार दिन के सुख के ऊपर दुख का समुंदर उड़ेल देती। तमाम रात पति की याद में डूबी दीपाली की आँखों से गंगा-जमुना प्रवाहित होती रहती और कब निद्रा देवी उस पर मेहरबानी कर देतीं वह स्वयं नहीं जान पाती।

दिन इसी तरह बीत रहे थे कि एक दिन रंग-बिरंगे फूलों के गुलदस्ते के साथ एक पत्र दीपाली के नाम आया। आश्चर्य के साथ उसने लिफाफा खोला...पत्र उत्कर्ष का था।

“दीपाली जी, काफ़ी दिनों पूर्व मुझे धन्यवाद देने के लिए आपने क्षण भर को फोन किया था। मेरा पत्र प्राप्त कर कुछ अन्यथा मत लीजिएगा...आपका दुखी और उदास चेहरा जब मेरी आँखों के सामने आता है तो मन पीड़ा से भर जाता है। आपका कष्ट ऐसा है जिसका भागीदार कोई नहीं बन सकता...फिर भी हिम्मत करके लिख रहा हूँ...यदि आप अब मुझे अपने जीवन में लाना पसंद करें तो मैं आपको बिना किसी शर्त के सहर्ष स्वीकार करने को तैयार हूँ। उत्तर की प्रतीक्षा रहेगी...उत्कर्ष।”

पत्र पढ़कर दीपाली की आँखों से आँसुओं की धारा बह चली और हृदय ग्लानि से भर आया। जिसके साथ उसने और उसके परिवार ने धोखे का नाटक खेला...उनका और उनके पिता का अपमान किया, आज वही कितनी सहृदयता और बड़प्पन के साथ उसको अपनाने को तैयार हैं। तुमने गलत लिखा है उत्कर्ष...मेरे दुख के भागीदार तो तुम स्वयं हो...मैं ही तुम्हें पहचान न सकी। उसे लगा...उसके इतने बड़े जख्म को, उत्कर्ष के बड़प्पन ने क्षण भर में भर दिया। दीपाली ने पत्र धीरे से पिता को पकड़ा दिया।

प्रतिदान

अभिषेक के पत्र को कई बार पढ़ने के बाद भी नीरजा उसमें लिखी बात की सत्यता पर विश्वास नहीं कर पा रही थी। सुंदर और अत्यधिक आकर्षक व्यक्तित्व वाले अभिषेक ने अत्यंत साधारण शक्ल-सूरत वाली लड़की से विवाह करने की अपनी रजामंदी दी थी। हाल-चाल पूछने और बताने के बाद उसने स्पष्ट शब्दों में लिखा था—“दीदी, यह पढ़कर आश्चर्य मत करना कि मैं आपकी शैलजा दीदी की बेटी सौम्या के साथ विवाह करने को तैयार हूँ। ऐसा निर्णय मैंने स्वेच्छा से लिया है, किसी के दबाव में आकर नहीं। कृपया उन्हें यह सूचना दे दें।”

यह सत्य था कि उसके ही प्रयास से अभिषेक उस महायात्रा के पथ पर जाने से बच गया था जिस पर उसे जबरन ढकेल दिया गया था। लेकिन इस एहसान से उन्मत्त होने के लिए वह कितना कुछ करता रहेगा...नीरजा ने हाथ लिए पत्र को इतने श्रद्धाभाव से देखा जैसे वह पत्र न होकर कोई धार्मिक पुस्तक हो। पत्र को निर्निमेष निहारती नीरजा धीरे-धीरे उस अतीत में खोती गई...जिसका मुख्य केंद्र अभिषेक था।

चार-पाँच वर्षों में यह पहला अवसर था जब उसे भाई के पास रक्षा-बंधन के पर्व पर जाना पड़ा। अभिषेक ने पहले ही सूचित कर दिया था कि इस बार अधिक व्यस्तता के कारण वह राखी बँधवाने नहीं आ सकेगा। रविवार मिलाकर तीन दिन का अवकाश था। अतः गौरव और नीरजा दोनों बच्चों अंकुर और प्राची को लेकर फतेहपुर चले गए थे।

गौरव और नीरजा दोनों पति-पत्नी कॉलेज में अध्यापक थे। अंतर केवल इतना था कि वह इंटर कॉलेज में अध्यापिका हैं जबकि गौरव स्नातक कॉलेज में अंग्रेजी के प्रोफेसर हैं। सुबह दोनों बच्चों को स्कूल भेजकर नीरजा गौरव

के साथ अपने कॉलेज चली जाती। आया मकान के बाहरी भाग में बनी एक कोठरी में रहती और दिनभर घर की रखवाली भी करती।

रात्रि में भोजनोपरांत जब बच्चे सो गए और दूध का गिलास लिए नीरजा ने शयन कक्ष में प्रवेश किया तो गौरव भी सो चुके थे। उसने समझ लिया...तीन दिन अभिषेक के यहाँ तकल्लुफ से रहना, फिर सफ़र और यहाँ भी आकर कॉलेज में ड्यूटी देना...सब मिलाकर वह थक से गए थे। थकी तो वह भी थी लेकिन उसे नींद न आयी। अभिषेक के यहाँ वह पहली बार गई थी, उसे वहाँ अच्छा भी लगा। लेकिन उसका बड़ा-सा आलीशान बँगला सूना-सूना लगता था। उसने अभिषेक से कह दिया था—“इस साँय-साँय करते तुम्हारे महल में मैं अब तब तक नहीं आऊँगी जब तक हमारी भाभी नहीं आ जाएगी।” अभिषेक ने मुस्कराकर उसे यह अधिकार दे दिया कि उसे ही अपनी मनपसंद भाभी को लाना होगा। उसकी बात से नीरजा को गर्वानुभूति हुई थी...उसने सोचा—आज के समय में तो अपना सगा भाई भी इतना नहीं सोचता। जल्दी ही किसी अच्छे परिवार में सुंदर लड़की देखकर बात पक्की कर लेगी।

अभिषेक उसे अपनी सगी बहन से भी अधिक स्नेह व सम्मान देता है। वह दोनों पति-पत्नी तो साधारण से अध्यापक ही हैं। अभिषेक के कारण उनमें जो परिवर्तन आया है उसे निश्चय ही कायाकल्प ही कहेंगे। जिस किराए के फ्लैट में वे रहते थे उसमें तो अब पाँव रखने का भी जी न चाहे। उस फ्लैट से आधे मील की दूरी पर हनुमान जी के मंदिर के ठीक सामने एक आलीशान बँगला बनवाकर अभिषेक ने पहली बार राखी बाँधने का उपहार उसे दिया था। इसके कुछ दिन बाद ही उसने प्राची के विवाह के लिए, उसी के नाम से पचास हजार का फिक्स डिपॉजिट भी कराया। अभिषेक द्वारा आर्थिक उपहारों के आधिक्य के कारण उसने कई बार सोचा कि वह नौकरी छोड़ दे, लेकिन जब-जब उसके मन में यह विचार आता दूसरी तरफ गौरव की निष्पक्ष राय होती—नौकरी छोड़ देना घर आती लक्ष्मी का अपमान करना है। अतः वह अपने को अध्यापन कार्य से पृथक न कर सकी। अभिषेक के प्रति अनुग्रहीत नीरजा यह भूल जाती कि उसने भी उसके साथ कुछ किया है...अन्यथा आज वह कहाँ और किस स्थिति में होता भगवान ही जाने।

अपने छह वर्षीय बेटे अंकुर और चार वर्षीया बेटी प्राची को स्कूल भेजने के बाद नीरजा स्वयं तैयार होती। गौरव उसे छोड़ते हुए अपने कॉलेज चले जाते। बच्चों की छुट्टी पहले हो जाती अतः रिक्शे वाले को कह दिया गया था कि दोनों बच्चों को उनकी बुआ माधवी के यहाँ छोड़ दिया करे। अपने कॉलेज से लौटते समय गौरव बच्चों व नीरजा को लेते हुए आ जाते। यह उनका नित्य का नियम था। एक दिन कॉलेज से लौटते समय नीरजा ने देखा कि सड़क के बायीं तरफ बने लंबे चबूतरे पर एक नवयुवक अजीब ढंग से गरदन हिलाता हुआ बैठा है। स्पष्ट था कि उसका मानसिक संतुलन ठीक नहीं है। नीरजा ने गौरव का ध्यान भी उसकी तरफ आकृष्ट कराया। उसने सोचा...यदि वह युवक सचमुच पागल है तो भगवान ने उसके साथ कितना बड़ा मजाक किया है। न जाने क्यों नीरजा का मन उसके प्रति सहानुभूति से भर आया।

लगभग रोज ही नीरजा आते-जाते उस युवक को देखती। कभी कोई दया दिखाकर कुछ खाने को दे देता तो वह खा लेता अन्यथा गरदन हिलाता बैठा रहता, कभी-कभी वह सोया हुआ भी दिख जाता। धीरे-धीरे तीन-चार माह बीत गए। अब वह पागल युवक मैला-कुचैला दिखने लगा था। दाढ़ी बढ़ आई थी। सिर के बाल भी बढ़कर उलझे-बिखरे हो गए थे। एक दिन उसी मार्ग से लगभग ग्यारह बजे, नीरजा गौरव के साथ एक विवाह समारोह से वापस आ रही थी। उसने देखा कि एक महिला और दो पुरुष उस पागल युवक को कुछ खिला रहे हैं। उसके बाद उसमें से एक पुरुष ने उसे सीरिज से सुई भी लगाई। वह समझ न सकी कि वह दयालु लोग कौन हैं जो उसे खाना-पीना देने के साथ उसके दवादि का भी ध्यान रख रहे हैं। दो चार मिनट रुककर पति-पत्नी आगे बढ़ गए। नीरजा ने सोचा वह भी कभी-कभी उसको कुछ खाने-पीने का लाकर दे दिया करेगी। अभी तक वह उसे केवल देखती ही आ रही थी।

इसके बाद नीरजा कई बार उसे खाने-पीने की चीजें जैसे—पकौड़ी, पूड़ी या मिठाई आदि पालिथिन के पैकेट में बंद करके दूर से ही उसके पास डाल देती। उसके करीब जाने की उसकी हिम्मत न पड़ती। उसकी दी चीजें वह खाता है या नहीं...यह देखने के लिए वह कभी रुकी नहीं।

रविवार को कॉलेज बंद होने के कारण नीरजा गौरव के साथ अपनी एक सहेली से मिलने गई थी।

दोनों उसी मार्ग से वापस आ रहे थे कि नीरजा का ध्यान उसी पागल युवक की तरफ खिंच गया...वह हाथ-पैर पटककर बुरी तरह से छटपटा रहा था। वह गौरव से दुखी आवाज़ में बोली—पता नहीं बेचारे को क्या हो गया है। गौरव ने सुना, लेकिन स्कूटर रोकना उन्हें ठीक नहीं लगा, अतः आगे बढ़ गए।

घर पहुँचकर नीरजा ने पुनः गौरव से पूछा—“कुछ अनुमान लगा सकते हो कि उस युवक को क्या बीमारी हो सकती है?” जबसे उसने उसकी तड़पने जैसी स्थिति देखी थी उसका मन बड़ा अशांत हो गया था। वह स्वयं नहीं समझ पा रही थी कि उस अनजाने पागल युवक के प्रति उसके मन में सहानुभूति क्यों जागृत हो उठती है? उसे बार-बार यही लगता कि वह पागल नहीं है।

गौरव ने स्पष्ट शब्दों में कहा—“उसकी हालत, परेशानी और बेचैनी देखकर तो यही लगता है कि वह नशीली दवाओं का सेवन करता है। लेकिन यह समझ में नहीं आता कि उसे नशे की चीज़ें मिलती कैसे हैं।”

“हो सकता है उसका कोई दोस्त उसकी मदद करता हो। उस रात हमने देखा था न दो-तीन लोग उसको कुछ खिला-पिला रहे थे। शायद...”

“लेकिन इस तरह वह अधिक दिन जीवित नहीं रह सकता नीरजा।” पत्नी की बात बीच ही में काटकर गौरव ने कहा।

“मेरी एक बात मानोगे...” कुछ सोचती हुई नीरजा ने कहा—“हम लोगों से उसका कुछ भला हो सके तो कर देना चाहिए।”

“मैं कुछ समझा नहीं।”

“यही कि हम उसे हॉस्पिटल में भरती करा दें...शायद दवा और परहेज से वह ठीक ही हो जाए।”

“तुम्हारी बात ठीक है। लेकिन ऐसा न हो कि हम उसकी मदद करने चलें और किसी आफ़त को सिर पर मोल लें ले। उस आदमी के बारे में तो हम कुछ भी नहीं जानते” गौरव ने बिना मतलब किसी परेशानी में पड़ने के प्रति सावधान करते हुए कहा। लेकिन नीरजा अपनी बात पर अड़ी

रही...जाने क्यों उसको विश्वास सा था कि वह युवक पागल नहीं है, उसे पागल बनाया गया है। वह ठीक भी हो सकता है।

शीघ्र ही उचित अवसर देखकर जब वह गहरी नींद में सो रहा था। नीरजा और गौरव ने अलग सवारी पर उसे अस्पताल पहुँचा दिया। मानसिक चिकित्सक डॉक्टर अजय टंडन ने उसका पूरी तरह से चेक-अप करने के बाद बताया—इसे न कोई रोग है और न यह पागल हैं अपितु केवल ड्रग्स लेने के कारण इसकी यह हालत हुई है। सही उपचार और नशीली दवाओं पर पाबंदी होने से यह निःसंदेह नार्मल स्थिति में आ सकता है...सुनकर नीरजा ने राहत की साँस ली। डॉ. टंडन की पूर्ण निगरानी में उसका इलाज आरंभ हो गया। दवा-इंजेक्शन के लिए रुपये देने के अतिरिक्त डॉक्टर खाने-पीने में जो कुछ भी बताते नीरजा घर से बनाकर ले जाती अथवा भेज देती।

स्थिति काबू में न आने के कारण उसे दो-तीन बार बिजली का शॉक दिया गया। नींद की गोलियाँ, खाने-पीने में परहेज और हर प्रकार की सावधानी बरतने के फलस्वरूप उस युवक की हालत में काफी सुधार आया। लेकिन स्थिति सुधरने के बावजूद भी कभी-कभी वह अत्यधिक बेचैन हो जाता और हाथ-पैर पटकने व लड़ने जैसी स्थिति पैदा कर देता, तब विवश होकर डॉक्टर को उसे नींद का इंजेक्शन लगाना पड़ता। फिर भी डॉक्टर टंडन के तीन-चार माह के अथक प्रयास के बाद वह लगभग पूर्ण रूप से स्वस्थ हो गया। उसके स्वस्थ होने के साथ एक भारी रहस्योद्घाटन हुआ...वह युवक जिसका नाम अभिषेक था, फतेहपुर के बिंदकी नामक जगह में सैकड़ों बीघा ज़मीन और दो हवेलीनुमा मकानों का एकमात्र वारिस था। उसने बताया कि उसके पिता दो भाई थे। वह अपने पिता की एकमात्र संतान है जबकि चाचा के चार पुत्र हैं। जिस वर्ष उसने रुड़की से इंजीनियरिंग की पढ़ाई पूरी की, उसी वर्ष ग्रीष्म में अचानक कस्बे में भयानक रूप से हैजा फैल गया, जिसकी चपेट में उसके माता-पिता दोनों ही आ गए। बड़े भाई और भाभी के आकस्मिक निधन ने उसके चाचा के मन में लोभ उत्पन्न कर दिया। उनके हिस्से की ज़मीन-जायदाद हड़पने के विचार से उन्होंने अपने पुत्रों द्वारा पहले तो उसे नशीली दवाओं की तरफ आकृष्ट कराया और फिर उसे बराबर उपलब्ध करवाकर बुरी लत

लगवा दी, जिस कारण वह अपना होश-हवाश खोकर हर समय नशे में बेहोश पड़ा रहने लगा, इसके बाद का इतिहास उसे याद नहीं। लेकिन उसने अपने चाचा और चचेरे भाइयों के कुकृत्यों का अनुमान लगाते हुए पुनः कहा—संभवतः जब वह नशे में पड़ा रहा होगा तभी उसे उठवाकर दूसरे शहर में पहुँचवा दिया गया। यहाँ भी उसको किसी व्यक्ति विशेष द्वारा नशीली दवाएँ और इंजेक्शन देते रहने का पूरा प्रबंध था...जिस कारण वह कभी भी होश में नहीं आ सका।

उधर सभी रिश्तेदारों और पड़ोसियों व परिचितों में उसके चाचा ने यह अफ़वाह फैला दी कि माता-पिता दोनों के साथ-साथ स्वर्गवासी होने से अभिषेक को गहरा सदमा पहुँचा और वह अपना मानसिक संतुलन खो बैठा। काफ़ी उपचार के बाद भी जब कुछ फायदा नहीं हुआ तो उसे आगरा के मेंटल हॉस्पिटल में भरती कराना पड़ा। अभिषेक की पूरी ज़मीन-जायदाद पर उसके चाचा और उनके पुत्रों का अधिकार हो चुका था। उसके चाचा निश्चित थे कि भतीजे को उन्होंने जिस हालत में पहुँचा दिया है, उससे वह उबरने वाला नहीं है।

अभिषेक समझता था कि उसे उस नर्क और मृत्यु के मुँह से खींच कर निकालने वाली नीरजा थी। उसका वह तहे दिल से ऋणी था। वह यह भी समझता था कि इस ऋण से वह कभी किसी जन्म में भी उससे उऋण नहीं हो सकेगा, लेकिन अगर वह उसका शतांश भी चुका सका तो अपने को धन्य समझेगा। उसे इस बात का भय था कि उसे उस स्थान से गायब पाकर उसके चाचा और चचेरे भाई अवश्य उसकी तलाश कराएँगे और संभव है उससे भी धिनौना कदम उठाना चाहें। इसलिए वह हर तरह की सावधानी बरत रहा था। गौरव के साथ विचार-विमर्श करके अभिषेक ने पहले तो पुलिस अधीक्षक और जिलाधिकारी को संपूर्ण हालात की जानकारी दी। तत्पश्चात एक योग्य वकील के सहयोग से अपने चाचा पर मुकदमा दायर कर दिया।

जब मुकदमे की जानकारी उसके चाचा मनोहरदास को हुई तो वह स्तब्ध रह गए। अचानक उसके गायब होने की सूचना पाकर उन्हें इसके जीवित रहने के प्रति विश्वास तो अवश्य हो चला था लेकिन वह कभी

इतना भी ठीक हो जाएगा कि अपने हक के लिए मुकदमा दायर कर देगा, इसकी उन्हें रत्ती भर भी उम्मीद नहीं थी। लगभग एक वर्ष तक मुकदमा चला। जाँच-पड़ताल करने व साक्ष्य इकट्ठा करने में यह समय लगा था। हद दर्जे के चालाक मनोहरदास और उनके पुत्रों ने पानी की तरह धन खर्च किया, लेकिन मुकदमा जीत न सके। अभिषेक का पूरा हिस्सा और अधिकार उन्हें वापस करना पड़ा। जालसाजी के दंड स्वरूप मनोहरदास को कुछ हर्जाना भी भरना पड़ा।

अभिषेक को इंजीनियर बनने की अपेक्षा अपनी पैतृक संपत्ति (जमीन-जायदाद) का सही बंदोबस्त करना अधिक उचित प्रतीत हुआ। अतः उसने बिंदकी में ही स्थायी रूप से रहने का निश्चय किया। नीरजा को उसने अपनी बड़ी बहन का दर्जा दिया। उसे और गौरव को वह पूरा आदर-सम्मान देता। अपने खेत का कुछ भाग बेचकर उसने इलाहाबाद शहर के अंदर एक शानदार बँगला बनवा कर नीरजा को रक्षाबंधन पर राखी बाँधने पर उपहारस्वरूप भेंट किया। यद्यपि गौरव और नीरजा ने इतना बड़ा उपहार लेने से पूरी तरह इंकार किया लेकिन अभिषेक ने कृतज्ञ भाव से कहा—“दीदी, जिस अमंगल पथ से हटाकर आपने मेरा उद्धार किया उसके प्रतिदान में यह कुछ भी नहीं है।” कुछ दिन बाद उसने प्राची के नाम पचास हजार का फिक्स डिपॉजिट उसके विवाह के लिए जमा करा दिए।

अभिषेक के पास से आने के एक सप्ताह बाद नीरजा की बड़ी बहन शैलजा अपनी बेटी सौम्या के साथ कुछ दिन उसके पास रहने को आ गई। नीरजा से बातें करते-करते शैलजा रो पड़ी...दो वर्ष हो चुके थे सौम्या को एम.ए. किए लेकिन अभी उसकी शादी कहीं तय नहीं हो सकी थी जिसका प्रमुख कारण यह था कि शैलजा के पति दिवंगत हो चुके थे और कोई भाग-दौड़ करने वाला नहीं था। इसके अतिरिक्त दहेज की अधिक माँग के साथ सौम्या का साँवला रंग व साधारण नाक-नकशा भी शादी तय होने में बाधक बन रहा था...इन तीनों रुकावटों का कोई हल शैलजा की समझ में नहीं आ रहा था। नीरजा ने उसे धैर्य बँधाते हुए कहा—“दीदी, परेशान मत होइए। हम आपसे वायदा करते हैं कि अब सौम्या के विवाह के लिए गौरव, भाग-दौड़ करने में कोई कसर बाकी नहीं छोड़ेंगे।” नीरजा की बात

से शैलजा को कुछ राहत सी मिली। बातचीत का दौर अभी चल ही रहा था कि अचानक अभिषेक ने प्रवेश किया। नीरजा ने आश्चर्य व्यक्त किया—
“तुम अभिषेक? कैसे आना हुआ?”

“बस आप लोगों की याद आ गई और चला आया।” कुछ रुककर उसने पूछा—“क्या बात है दीदी बड़ा शांत वातावरण लग रहा है।”

“कुछ विशेष नहीं, बस शैलजा दीदी सौम्या के विवाह के लिए चिंतित हैं। कहीं तय हो जाता तो वह अपनी जिम्मेदारी से मुक्त हो जातीं।” नीरजा ने शैलजा की परेशानी से अभिषेक को अवगत कराया।

अभिषेक ने क्षणभर को पहले शैलजा की तरफ़ और फिर उसकी बगल में बैठी सौम्या की तरफ़ देखा...जाने क्यों वह उसे अपने नाम के अनुरूप ही सरल व सीधी लगी। नीरजा ने सौम्या को इशारा किया कि वह चाय बनाकर ले आए। सौम्या उठकर किचन की तरफ़ बढ़ गई। अभिषेक किसी व्यक्तिगत काम से आए थे, उसी दिन वापस चले गए। इसके एक सप्ताह बाद उसका पत्र आया था जिसमें उसने सौम्या से विवाह करने की बात स्पष्ट शब्दों में लिखा था।

वह अभिषेक के बड़प्पन पर नतमस्तक थी...जिस लड़की के साधारण रूपरंग और दहेज के अभाव के कारण बात कहीं बन नहीं पा रही थी, उसे अभिषेक ने कितनी सहजता से अपनाने की बात लिख दी। शैलजा दीदी के सिर से उसने कितना बड़ा बोझ उतार दिया। पति के न रहने से वह ऐसे ही टूट चली थीं और बेटी की शादी तय न हो सकने से वह बराबर परेशान व दुखी रहती थीं। सौम्या के तो भाग्य ही सँवर गए। रानी महारानी की तरह रहेगी अभिषेक के साथ वह। नीरजा को समझते देर न लगी कि शैलजा दीदी के साथ नहीं अपितु उसकी भाँजी होने के कारण उसको उसके एहसान का एक और प्रतिदान दिया है अभिषेक ने...।

फाल्गुन की रंगीन बरसात

चार दिन बाद दुर्गेश आगरा से वापस लौटे। नंदिनी के साथ विवाह के पश्चात यह प्रथम अवसर था जब उन्हें अकेले रहना पड़ा। गत तीन वर्ष का एकाकी जीवन भी शायद उन्हें इतना भारी नहीं प्रतीत हुआ, जितना तीन दिन का यह अकेलापन। ऑफिस से लौटकर कपड़े बदले बगैर ही वह चुपचाप पलंग पर पड़ गए। चाय बनाकर पलंग के साइड टेबल पर रखती कमला ने धीरे से पूछा—“मेम साब कब आएँगी साहब?” “कल मैं लेने जाऊँगा।” चाय का प्याला उठाते हुए दुर्गेश ने कहा।

“हाँ साब, जल्दी से ले आइए, उनके और गुड़िया के बिना घर में बिलकुल अच्छा नहीं लगता।”

“मुझे भी अच्छा नहीं लगता, कमला, पर करूँ क्या, होली पर नंदिनी का भाई के पास जाना जरूरी हो जाता है।” दुर्गेश रुक गए और बात का रुख बदलकर पुनः बोले—“अच्छा देख कमला, खाना हलका ही बनाना, खाकर जल्दी सो जाऊँगा, सुबह की ही ट्रेन से लेने जाना है।” “जी अच्छा”—कहकर वह रसोईघर की तरफ बढ़ गई।

लगभग एक घंटे पश्चात भोजन तैयार कर वह पुनः दुर्गेश के पास आकर बोली, “साब, खाना मेज पर लगा दिया है, किवाड़ बंद कर लीजिए मैं जा रही हूँ।”

दुर्गेश ने उठकर दरवाजा बंद कर लिया। अभी कुल सात बजे थे। सोने का कोई प्रश्न नहीं था, फिर भी वह अलसाया-सा पलंग पर पड़ा रहा। उठकर टी.वी. तक खोलने की इच्छा नहीं हुई। बड़ी देर तक कभी बाएँ कभी दाएँ करवट बदलते दुर्गेश की दृष्टि अचानक शो केस में रखे चंदन के फ्रेम में जड़े उस चित्र पर टिक गयी, जिसमें वह और नंदिनी दूल्हा-

दुलहन बने खड़े हैं और पीछे शुभेंदु उनके सिर पर हाथ रखे आशीर्वाद की मुद्रा में।

शुभेंदु उसके बचपन का दोस्त है। एक-दूसरे से संबंध भी चोली-दामन-सा ही रहा है। एक साथ शुरू किया गया अध्ययन साथ ही साथ समाप्त हुआ। कानून की पढ़ाई करने के बाद वह रजिस्ट्रार के लिए चुना गया, जबकि प्रतिभासंपन्न शुभेंदु का मुंसिफी में चयन हो गया। छह-सात वर्ष मुंसिफ रहने के बाद पदोन्नति कर वह जज की कुर्सी पर आसीन हुआ। यदि यह कहा जाए कि जज की कुर्सी उसके द्वारा शोभित हुई तो अतिशयोक्ति न होगी, क्योंकि न्याय-कानून के तराजू को हर एक के प्रति उसने सदैव ही सही माप से तौला। उसकी अदालत में कभी न्याय के ऊपर अन्याय हावी नहीं हुआ।

पाँच फुट दस इंच लंबा, गेहुँए रंग का शुभेंदु देखने में अत्यंत आकर्षक व्यक्तित्व का था। तमाम उम्र उसने अविवाहित रहने का फैसला कर लिया था। शुभेंदु की सहृदयता, संयम और महानता के आगे वह हमेशा नतमस्तक रहा। दुर्गेश अपने अतीत के उन दिनों को याद करने लगे जो उसने अपने परम मित्र के साथ व्यतीत किए थे।

पाँच वर्ष पूर्व जब वह मोहन लालगंज (लखनऊ) में रजिस्ट्रार के पद पर कार्यरत था, तभी संयोग से शुभेंदु का स्थानांतरण पदोन्नति के साथ लखनऊ के लिए हो गया। दोनों मित्र एक-दूसरे के करीब आकर अति प्रसन्न हुए। जब भी उसे अवकाश मिलता वह शुभेंदु के पास हो आता। सम्माननीय एवं ऊँचे ओहदे पर होने के कारण उसने मित्र से कभी अपने पास आने के लिए बराबरी की हैसियत की अपेक्षा नहीं की।

जहाँ विवाह होने के बाद दैवी कोप के कारण, दुर्गेश पत्नी-सुख से वंचित होकर दुखी व एकाकी जीवन व्यतीत कर रहा था, वहीं शुभेंदु आजीवन विवाह न करने का निर्णय कर पैंतीस वर्ष की आयु पारकर अत्यंत आनंद के साथ दिन व्यतीत कर रहा था। चाहे और अनचाहे रूप से व्यक्तिगत जीवन को अकेलेपन से काटते जब दोनों मित्र मिलते तो समय पंख लगाकर उड़ जाता।

एकाकी जीवन व्यतीत करने की भीष्म प्रतिज्ञा करने वाला शुभेंदु अपने निजी जीवन में अत्यंत हंसमुख और सांसारिक होने के साथ-साथ परमार्थ भावना से भी पूर्ण था। सरकारी कार्य के बाद संध्या समय क्लब में ताश व बैडमिंटन खेलना उसके प्रिय शौक थे। कभी-कभी मित्रों की अपने निवास पर गप्प-ठहाकों के बाद हलकी-फुलकी दावत दे डालना भी उसकी प्रिय आदतों में ही शामिल था। पर इन सबसे पृथक् एकादशी और पूर्णिमा जैसे धार्मिक पर्वों पर सत्यनारायण की कथा सुनकर गरीब व अपाहिज दीन-दुखियों को भरपेट भोजन कराना भी उसकी विशेषता थी, जिसके कारण हर कोई उसे कुछ अधिक ही श्रद्धा व सम्मान की दृष्टि से देखता व उसके बड़प्पन की सराहना करता।

दुर्गेश को वह दिन याद आया जब एक आवश्यक कार्य कहकर शुभेंदु ने उसे फ़ोन करके बुलाया था। होली से ठीक एक दिन पूर्व अर्थात् जिस दिन संवत जलाया जाता है। स्टेशन पर उसे लेने के लिए शुभेंदु स्वयं गाड़ी लेकर आया। बँगले पर पहुँचने के तीन-चार घंटे बाद तक भी उसने आवश्यक कार्य का जिक्र नहीं किया। उसने भी यह सोचकर नहीं पूछा कि वह स्वयं बताएगा।

संध्या समय शुभेंदु के कहने पर पुरानी फिल्म नागिन देखने का प्रोग्राम बना। फिल्म समाप्त होने पर जब बँगले की ओर जाते हुए दुर्गेश ने प्रशंसा करते हुए कहा, “पुरानी होते हुए भी फिल्म बहुत अच्छी थी।”

शुभेंदु जैसे इसी वाक्य की ही प्रतीक्षा कर रहा था। सुनते ही तपाक से बोला, “मुझे तो वह फिल्म इतनी अच्छी लगी कि मैंने इसे चार-पाँच बार देखा। आज आखिरी दिन था इसलिए तुमको दिखाने के लिए फ़ोन करना पड़ा।”

इतना खुशदिल मनमौजी इनसान भला कौन होगा जो ज़रूरी कार्य के बहाने पिकचर दिखाने के लिए फ़ोन करके बुलाए। दुर्गेश इन्हीं विचारों में खोया था कि अचानक तेज़ ब्रेक लगाकर शुभेंदु ने कार रोक दी। सामने एक बीस-बाइस वर्षीया युवती खड़ी थी, जो कार के नीचे आते-आते रह गयी थी। शुभेंदु ने कुछ तेज़ आवाज़ में कहा—“बीच रास्ते में क्यों खड़ी हो? दब जाती तो?” “दबने के लिए ही खड़ी थी।” युवती ने मंद आवाज़ में कहा।

उसका उत्तर सुनकर शुभेंदु ने दुर्गेश से कहा, “लगता है यह लड़की कुछ दुखी है।”

एक दृष्टि उस गरीब-विवश लड़की पर डालकर, जो अपने मैले-कुचले वस्त्रों में भी खूबसूरत दिख रही थी, दुर्गेश ने शुभेंदु की बात को स्वीकारा। अपने स्वभाववश शुभेंदु ने पीछे हाथ बढ़ाकर कार का दरवाज़ा खोलते हुए कहा, “बैठ जाओ।” पर वह लड़की बैठी नहीं। कुछ भयभीत-सी लग रही थी। शुभेंदु ने बाह्यरूप से उसकी मनोदशा को भाँपकर उसको आश्वासन देते हुए कहा, “निश्चित होकर बैठ जाओ, तुम्हारे साथ कोई धोखा नहीं होगा।” शुभेंदु की तरफ से आश्वासन के शब्द सुनकर उसने एक बार पलक उठाकर उसकी तरफ देखा और आश्वस्त होकर कार के अंदर बैठ गई।

बँगले पर पहुँचकर शुभेंदु ने चपरासियों को निर्देश दिया कि उस लड़की के स्नानादि का प्रबंध कर दें व एक पृथक कमरे में रहने की व्यवस्था भी। लगभग आधा घंटे बाद वह हम दोनों के सामने आकर खड़ी हुई तो हम उसे देखते ही रह गए। शुभेंदु की मरदानी धोती, सफ़ेद कुरते में लिपटी, खुले लंबे केश में वह अत्यधिक आकर्षक लग रही थी। शुभेंदु ने नाम पूछा तो बोली—“नंदिनी।” शुभेंदु ने पास रखी कुर्सी पर बैठ जाने का इशारा किया, पर वह बैठी नहीं। भोजन लग चुका था। औपचारिकता निभाते हुए शुभेंदु ने उससे भी खाने को कहा, पर उसने मना करते हुए कहा—“मैं बाद में खा लूँगी।”

दूसरे दिन होली का रंगीन पर्व था। दुर्गेश ने शुभेंदु के साथ जमकर होली खेली। नई और अपरिचित होने के कारण नंदिनी चुपचाप एक तरफ खड़ी सब कुछ देखती रही। तीसरे दिन दुर्गेश वापस आ गया। एक ज़रूरी कार्य के बहाने फिल्म देखने के लिए शुभेंदु का बुलाना, मार्ग में अप्रत्याशित रूप से नंदिनी का मिलना और उसका शुभेंदु के घर पर आकर रहना आदि बातें, उसे बार-बार याद आती रहीं।

ऐसे तो वह जब भी शुभेंदु के यहाँ जाता अपनी नन्हीं बेटी पंकी को भी अवश्य साथ ले जाता, पर इस बार कुछ जल्दी में जाने के कारण उसे कमला के जिम्मे ही छोड़ गया था और इसी कारण वह शुभेंदु के यहाँ

अधिक रुक भी नहीं सका, जबकि दो-एक दिन वहाँ और रुक जाने की उसकी भारी आकांक्षा थी। पर जिस सबब से वह रुकना चाहता था, उस उत्सुकता को शांत करने हेतु कुछ ही दिनों बाद शुभेंदु का पत्र आ पहुँचा। पत्र में उसने अपना समाचार नहीं के बराबर लिखा था। उसके विषय में भी कम पूछा था। जो कुछ भी लिखा था वह सब नंदिनी के जीवन और बात-व्यवहार के बारे में। पत्र का सारांश था—“तुम नंदिनी के विषय में जानने को अवश्य उत्सुक होंगे। वह मेरे साथ ही है। अब उसे देखकर तुम कदाचित नहीं कह सकते कि यह वही लड़की है, जो हमारी कार के नीचे आने को खड़ी थी।

“मैंने उसका मनपसंद पहनावा सलवार-कुर्ता कई खरीद दिए हैं, वह अत्यंत आदरपूर्वक मुझे भाई साहब कहकर संबोधित करती है। सुबह की चाय वह स्वयं अपने हाथों बनाकर मुझे देने आती है। सच मानो दुर्गेश, मैं निहाल हो उठता हूँ। वास्तव में मुझे छोटी बहन मिल गई है। भगवान से प्रार्थना है कि मेरे इन प्रिय दिनों को किसी की बुरी नज़र न लगे।”

“अपनी चाची की प्रताड़ना व दुर्व्यवहार से थककर ही वह आत्मघात के लिए विवश हो गई थी। बारहवीं तक की शिक्षा के बाद चाची की बंदिश के कारण वह आगे नहीं पढ़ सकी। अतः प्रयास करके स्नातक कॉलेज में उसका प्रवेश करा दिया है। तुम्हारे बारे में अक्सर पूछती रहती है। अवसर निकालकर आने की कोशिश करना।”

दुर्गेश ने अपने मित्र एवं उच्च पदाधिकारी शुभेंदु के महत कार्यों एवं विचारों की मन ही मन प्रशंसा की। वास्तव में वह काबिले तारीफ़ है। ज़माने की सतायी लड़की को सहारा देकर उसने उसकी जीवन-रेखा ही परिवर्तित कर दी थी—इसके लिए भी दिल चाहिए, सोचा दुर्गेश ने। निकट भविष्य में शीघ्र जाने का विचार कर उसने पत्र का उत्तर दे दिया।

समय बीतता रहा। काफ़ी दिनों से शुभेंदु का पत्र न आने से दुर्गेश चिंतित थे। अतः दो-तीन दिन का अवकाश लेकर पंकी के साथ लखनऊ पहुँच गया। शुभेंदु उसके अचानक आने से कुछ अधिक ही प्रसन्न हुआ। नंदिनी भी पुलकित हुई। उसको पहचान सकना वास्तव में मुश्किल-सा प्रतीत हुआ। गौरवर्ण के साथ सुगठित शरीर की अधिकारिणी, बड़ी-बड़ी आँखों

को छाया करतीं भारी-भारी पलकें, पतली सुंदर नाक व पतले गुलाबी होंठ, जैसे सौंदर्य के लिए अपेक्षित समस्त गुणों की वह संगम हो।

शुभेंदु ने मुस्कराकर बताया—“इस नटखट को केवल सफ़ेद वस्त्र ही प्रिय हैं?” दुर्गेश ने देखा वास्तव में सफ़ेद सलवार-कुर्ते में वह संगमरमर की सजीव मूर्ति—सी प्रतीत हो रही थी। क्षण भर को वह पलकें झपकाना भी भूल गया पर तुरंत अपने पर नियंत्रण कर सोचा—“नंदिनी के प्रति मन में कोई वाहियात विचार नहीं आना चाहिए। क्योंकि मेरे परम प्रिय मित्र ने उसे अपनी बहन का दर्जा दिया है।”

दुर्गेश तीन दिन शुभेंदु के पास रहा। पिकी तो नंदिनी से इस कदर हिल-मिल गई, जैसे मुद्दत से उसे जानती हो। साथ-साथ नाश्ता खाना, ताश खेलना, घूमना, पिकनिक आदि पर जाना व सिनेमा देखना। समय पंख लगाकर उड़ गया। चौथे दिन दुर्गेश वापस आ गया। शुभेंदु और नंदिनी उसे स्टेशन तक छोड़ने आए। कार से उतरते ही पिकी नंदिनी से लिपटकर रोने लगी—“आंटी, तुम भी हमारे साथ चलो। वहाँ अकेले हमें अच्छा नहीं लगता।” नंदिनी की आँखों में आँसू भर आए। अवरुद्ध कंठ से वह बोली, “रोते नहीं बेटे, मैं ज़रूर आऊँगी।” गाड़ी प्लेटफार्म पर सरकने लगी।

धीरे-धीरे तीन-चार माह बीत गए। दुर्गेश ऑफिस में बैठा सरकारी कार्य कर रहा था, पर मन बार-बार शुभेंदु और नंदिनी पर अटक जाता था। चार बजने को थे। वह उठने ही वाला था कि डाकिया मेज़ पर एक लिफ़ाफ़ा रख गया। ऊपर लिखे पते की लिखावट से उसने अविलंब जान लिया कि पत्र शुभेंदु का है। पत्र पढ़ने की अपनी उत्सुकता रोक न सकने के कारण समय और स्थान की परवाह किए बिना दुर्गेश ने लिफ़ाफ़ा खोला—“प्रिय दुर्गेश, काफ़ी दिनों से तुम्हारा कोई समाचार नहीं मिला। इधर मैं भी व्यस्त रहा। मैंने अपना तबादला आगरा करा लिया है। कारण तुम समझ सकते हो। नंदिनी को लेकर लोग बेसिरपैर की अफवाहें फैला रहे थे, अतः मुझे वहाँ से हट जाना ही बेहतर प्रतीत हुआ।

नंदिनी के लिए वर की तलाश कर रहा हूँ। उसके हाथ पीले हो जाएँ तो मैं अपनी जिम्मेदारी से मुक्त हो जाऊँ। इधर नंदिनी में कुछ परिवर्तन देख रहा हूँ। उसकी चंचलता लुप्त प्राय हो गयी है। जिस स्नेह से वह मुझे

भाई साहब कहती थी, वह संबोधन भी कहीं गुम सा हो गया है। यद्यपि मेरे प्रति उसका आदरभाव पूर्वतः है। बस करता हूँ—पत्र लिखना।”

शुभेंदु के स्थानांतरण की खबर पढ़कर दुर्गेश को आश्चर्य व दुख दोनों हुआ। शीघ्रता में बिना उसे खबर किए उसने अपना ट्रांसफर करा लिया था। जब भी उसे अकेलापन खलने लगता था वह शुभेंदु के यहाँ हो आता था। मन काफ़ी कुछ बदल जाता था। अब यह संभव नहीं था।

नंदिनी का भार अपने ऊपर लेकर अब उसके प्रति शुभेंदु अपना जो कर्तव्य समझ रहा था, वह भी सराहनीय है। ईश्वर उसको इस जिम्मेदारी से सफलतापूर्वक मुक्त करें। दुर्गेश ने मन ही मन उसके लिए हृदय से शुभ कामना की।

हठात एक दिन अप्रत्याशित रूप से शुभेंदु नंदिनी के साथ लखनऊ आ पहुँचा। सहर्ष उनका स्वागत करते हुए दुर्गेश ने कहा—“आखिर मेरी याद आपको यहाँ तक खींच ही लायी।”

“ऐसा ही समझ लो, “कहकर शुभेंदु मुस्कुराया। नंदिनी कुछ कमज़ोर व उदास-सी दिखी। उसने उसके कमज़ोर स्वास्थ्य का कारण जानना चाहा तो शुभेंदु बोले—“क्या बताऊँ जबसे इसके लिए वर तलाश रहा हूँ तबसे इसने अपनी ऐसी हालत बना ली है। तुम समझा सकते हो तो समझा दो।”

दुर्गेश ने अनुमान लगाया जिसने उसे आश्रय देकर भाई-सा स्नेह व अपनत्व दिया, उसके पास से जाने की बात से व्यथित होना स्वाभाविक है। शुभेंदु इंसान भी ऐसा था कि दो-एक घंटे के लिए भी उसके संपर्क में आया इंसान उससे प्रभावित हुए बिना नहीं रह सकता, फिर नंदिनी तो गत डेढ़-दो वर्षों से उसके साथ है, लगाव हो जाना स्वाभाविक है।

शुभेंदु ने यह भी बताया कि शादी के प्रति उसने नंदिनी की पसंद व इच्छा जाननी चाही, लेकिन उसने केवल इतना कहा—“आप मेरे आश्रयदाता हैं, कभी मेरे अहित की बात नहीं करेंगे।”

तीन दिनों तक नंदिनी व शुभेंदु ने दुर्गेश के फ्लैट व मन को आबाद रखा। पंकी तो नंदिनी से पलभर को भी दूर नहीं होती। दूसरे दिन प्रातः जब शुभेंदु पूजा-अर्चना में व्यस्त थे, नंदिनी ने दुर्गेश से कहा, “आपसे कुछ अनुरोध करना चाहती हूँ।”

“हाँ, हाँ बेफिक्र होकर कहो।” दुर्गेश ने कहा।

“छोटे मुँह बड़ी बात कह रही हूँ, ऐसा मत सोचिएगा। आपसे अनुरोध है कि मेरे लिए वर तलाशने का काम रुकवा दीजिए, मुझे विवाह नहीं करना है।”

दुर्गेश को अचरज हुआ। जो लड़की बेसहारा होकर आत्मघात के लिए खड़ी थी, आज वही जीवन में मिल रहे सम्मानपूर्ण ठोस सहारे को क्यों नकार रही है? दुर्गेश ने उसे समझाया—“तुमको विवाह कर लेना चाहिए, क्योंकि स्वयं अविवाहित रहने का निर्णय लेने वाले शुभेंदु तुम्हारे सगे भाई नहीं हैं। अतः उसके साथ अविवाहित अवस्था में तुम्हारा अधिक समय रहना समाज कभी गवारा नहीं करेगा।”

सुनकर नंदिनी व्यथित होकर बोली, “शिक्षापूर्ण होते ही मैं नौकरी कर लूँगी, फिर तो स्वयं उनसे अलग रहने लगूँगी।”

“ठीक है, तुम चाहती हो तो मैं कह दूँगा।” दुर्गेश ने नंदिनी को आश्वासन दिया, लेकिन जब उसने शुभेंदु को इस बात की जानकारी दी तो उन्होंने आश्चर्य से पूछा—ऐसा वह क्यों चाह रही है? तुमको पूछना था, दुर्गेश। खैर छोड़ो, आगरा पहुँचकर मैं स्वयं पूछ लूँगा।”

एकादशी के दिन व्रत रहकर स्नानादि के पश्चात दीन-दुखियों व अनाथ आश्रम के बच्चों को भरपेट दूध, फल व मिठाई खिलाने के बाद ही शुभेंदु मुँह में कुछ डालते थे। उस दिन भी फागुन के शुक्ल पक्ष की एकादशी का दिन था। होली आने में कुछ दिन ही शेष थे। दिनभर की व्यस्तता के बाद, संध्या समय फलाहार करते समय, सामने खड़ी नंदिनी से शुभेंदु ने पूछा—“दुर्गेश से तुमने क्या कहा था? क्या तुमको मुझ पर विश्वास नहीं कि मैं तुम्हारे लिए योग्य वर खोज सकूँगा?”

“मुझ से अधिक अब आपको कौन जान सकता है? फिर आप पर विश्वास न करने का क्या सवाल है?” नंदिनी ने अत्यंत मंद आवाज़ में कहा।

“फिर क्या बात है?” अत्यंत सहज भाव से पूछा शुभेंदु ने। पर नंदिनी का चेहरा अनायास रक्तिम हो उठा। नज़र उठाकर उसने एक दृष्टि शुभेंदु पर डाली और बिना कुछ बोले चुपचाप वहाँ से हट गयी।

अपने कमरे में आकर नंदिनी धम्म से पलंग पर पड़ गई। उसका मन हो रहा था कि वह खूब रो ले। उसे शुभेंदु के संरक्षण में रहते लगभग दो वर्ष हो गए थे। शुरू से आजतक उसके प्रति शुभेंदु के स्वभाव व स्नेह में कोई बदलाव नहीं आया वही उसके दिल की हालत से भी वह पूर्ण बेखबर रहा। दिन-रात एक ही आवास में रहते साथ-साथ भोजन नाश्ता बातचीत और घूमना-फिरना शुभेंदु उसके मन-मस्तिष्क में छा गया था। आरंभ में वह उन्हें भाई साहब कहकर संबोधित करती रही, पर धीरे-धीरे उसे लगा कि शुभेंदु तो वह देवता है, जिस पर वह फूल बनकर चढ़ चुकी है। लिहाजा वह भाई साहब की जगह केवल आप पर आ गई।

नंदिनी भली-भाँति जानती थी कि शुभेंदु ने तमाम जीवन अविवाहित रहने का निश्चय कर लिया है। संभवतः यही कारण था जो उसके हृदय में उत्पन्न अनुराग को समझने की कोशिश उसने कभी नहीं की। वह यह भी समझती है कि शुभेंदु के सामने जुबान खोलने जैसा दुस्साहस भी वह कभी न कर सकेगी। उसकी इस इकतरफा चाहत और अनुराग का क्या हश्र होगा वह समझ न सकी।

होली आने वाली है। शुभेंदु के घर में उसकी यह तीसरी होली होगी। पहली होली पर तो वह शुभेंदु व दुर्गेश से बिलकुल अपरिचित-सी रही, पर दूसरी होली-स्मरण आते ही वह रोमांचित हो उठी।

शुभेंदु सफ़ेद कुर्ता-पायजामा पहनकर मित्रों से होली खेलने के लिए बाहर निकलने ही वाला था कि दरवाज़े की आड़ में छिपी नंदिनी ने लपक कर उसके चेहरे पर बैंगनी व लाल रंग चुपड़ने के साथ लोटा भर गाढ़ा हरा रंग इस सफ़ाई के साथ डाला कि चेहरे के साथ शुभेंदु का पूरा शरीर रंग गया। वह खिलखिला कर हँस पड़ी।

“यह तुमने क्या किया? पहले बाहर तो हो आने देती।” शुभेंदु ने अपने सफ़ेद कपड़ों की हुई गति देखकर कहा तो नंदिनी फिर हँस पड़ी—“कितनी सफ़ाई से रंगा है मैंने आपको, शाबाशी दीजिए मुझे।” “चल नटखट बड़ी शाबासी वाली बनी है।” कहकर शुभेंदु ने उसके गाल पर धीरे से तुलसी की चपत लगाई और बाहर निकल गया। वह खुश थी जो शुभेंदु पर होली के दिन सबसे पहले उसने रंग डाला।

संध्या समय शुभेंदु के किसी मित्र ने उसे भांग की बरफ़ी खिला दी। इससे पूर्व शुभेंदु ने नशे की कोई चीज़ कभी नहीं खाई थी। भांग के असर के कारण एकाध घंटे के बाद उसको चक्कर-सा आने लगा तो वह अपने कमरे में जाकर चुपचाप लेट गया। थोड़ी ही देर बाद नंदिनी उसके कमरे में पहुँची, शुभेंदु से कोई मिलने आया था। पर शुभेंदु ने तबियत ठीक न होने से मिलने से मना कर दिया। नंदिनी की तरफ़ देखकर वह धीरे से बोला, “बैठ जाओ, जाने क्यों सिर में तेज़ चक्कर के कारण जी घबरा रहा है।”

“सिर दबा दूँ क्या?”

“नहीं, यहीं बैठ जाओ बस।”

नंदिनी पलंग के पास पड़ी कुर्सी पर बैठ गई। उसके हाथ को अपने हाथों में लेकर शुभेंदु ने विवश नेत्रों से उसकी तरफ़ देखते हुए कहा, “बड़ा अजीब-सी मन हो रहा है नंदिनी, तुम कहीं जाओ मत, यहीं मेरे पास बैठो रहे।”

नंदिनी के समस्त शरीर में जैसे विद्युत तरंगें दौड़ गईं। वह निर्निमेष अपनी उस खुशकिस्मत हथेली को देखती रही। शुभेंदु के मन के स्नेहिल भावों से अलग कुछ और की कल्पना ने उसे विचलित कर दिया। अत्यंत अनुरागपूर्ण नेत्रों ने उसकी तरफ़ देखती हुई नंदिनी ने कहा, “मैं आपके पास से कहीं नहीं जाऊँगी और धीरे से उसके हाथों को होठों तक लाकर चूम लिया।”

शुभेंदु विरोध करने की स्थिति में नहीं था, अपितु उसका दूसरा हाथ नंदिनी के घुटनों पर ही धरा रहा और इस स्थिति में नंदिनी की मनःस्थिति से बेखबर उसे नींद ने अपने आगोश में ले लिया। सोए हुए शुभेंदु के हाथ को उसने धीरे से पलंग पर रखा और झुककर उसके माथे पर एक मधुर चुंबन अंकित कर धीरे-धीरे कदम बढ़ाती, मन में ज्वार-भाटा समेटे अपने कमरे में आ गई।

दूसरे दिन शुभेंदु को किसी बात का स्मरण न रहा। नशे की बात नशे के साथ ही समाप्त हो गई थी। जबकि नंदिनी कई बार संकेतों द्वारा उसे उन क्षणों को याद दिलाने का प्रयास करती रही। तब से आज तक वह

शुभेंदु के प्रति अपने मन को बदल न सकी और न उससे साफ़-साफ़ कहने का साहस ही जुटा पायी। इस तरह मूक प्रणय को हृदय में संजोए चुपचाप समय काटती रही।

नंदिनी ने सोचा—रंगबिरंगी होली यदि उनके निराश मन को अपनी रंगीन फुहारों से तर न कर सकी तो उसे जीने का कोई अधिकार नहीं है। शुभेंदु उसके मन को कभी समझ न सकेंगे। यह अब तक के उनके स्वभाव से स्पष्ट हो चुका था। अपनी अपेक्षित मंजिल न पा सकने की आशंका से उसका दिल क्षोभ से भर आया। शुभेंदु के ख्यालों में खोयी उदास नंदिनी की आँखें कब झपक गई वह जान न सकी।

होली से दो दिन पूर्व अचानक शुभेंदु ने फ़ोन करके दुर्गेश को बुलाया। अविलंब आकस्मिक अवकाश लेकर वह आगरा पहुँच गया। बेटी को कमला के पास ही छोड़ दिया था। यहाँ आने पर जिस परिस्थिति से शुभेंदु ने उसे अवगत कराया उसकी तो उसने कल्पना भी न की थी। नंदिनी ने अधिक मात्रा में नींद की गोलियाँ खाकर दूसरी बार आत्मघात करने की कोशिश की थी। किंतु समय से उपचार मिल जाने के कारण उसका प्रयास विफल सिद्ध हुआ। उसके द्वारा अपने लिए लिखा पत्र शुभेंदु ने दुर्गेश को दिखाया—“मेरे आश्रयदाता, आपके समक्ष इतना बड़ा दुष्कांड करने के लिए क्षमा चाहती हूँ। आपने मुझे आश्रय देकर मेरे जीवन की रूपरेखा ही परिवर्तित कर दी। क्या थी, क्या बन गई? यह भी मेरे पूर्व जन्म का ही सुफल था, जो आप जैसे महान के आश्रय में रहने का सुअवसर प्राप्त हुआ।”

“इससे भी बढ़कर आपने पृथक से मेरी छोटी-सी दुनिया बसा देनी चाही। सचमुच चिराग लेकर ढूँढ़ने पर भी आप जैसे लोग नहीं मिल सकेंगे। आपके एहसानों तले इस तरह दबकर रह गयी हूँ कि इस जन्म में क्या ऐसे कई जन्मों में भी उनसे उद्धार होना संभव नहीं।”

“जिस बात को कहने का साहस न कर सकी, उसे हिम्मत करके कागज़ पर अंकित कर रही हूँ। आपके पास आने के कुछ दिन बाद से ही मेरे हृदय में आपके प्रति चाहत के अंकुर प्रस्फुटित हो गए थे। मैं आपके चरणों में अपना जीवन अर्पित कर दूँ, बस यही आकांक्षा थी। पर यह छोटे

मुँह बड़ी बात है। आप आकाश के चाँद-सितारे सदृश हैं—और मैं पृथ्वी की धूलअतः चुप रही।”

“आपकी भीष्म-प्रतिज्ञा पूर्ण हो तथा आप अपनी सामाजिक सेवाओं एवं परमार्थ के कार्यों में सदैव अग्रणी रहें। यही शुभकामना है। मेरे लिए केवल एक ही हल है, आत्मघात। आप बिलकुल चिंतित मत होइएगा। मैं अत्यंत खुशी के साथ जा रही हूँ। आपके साथ तमाम जीवन रहने का सौभाग्य नहीं मिला तो क्या आपकी छत्र-छाया में प्राण निकलेंगे यही क्या कम है। क्षमा की याचना के साथ—नंदिनी।”

दुर्गेश ने पत्र पढ़कर शुभेंदु की तरफ देखा तो उसकी आँखों में आँसुओं की धार बह रही थी। उसे धैर्य बँधाते हुए शुभेंदु ने कहा, “घबराओ मत, अब तो नंदिनी ठीक हो गई। हाँ, यदि तुम्हारी इच्छा हो तो...” वह कहने में हिचकिचा रहा था। शुभेंदु स्वयं बात काटकर बोले, “नहीं दुर्गेश, मैंने उसे बहन की दृष्टि के अतिरिक्त अन्य किसी भावना से कभी देखा ही नहीं।” थोड़ा रुककर शुभेंदु ने पुनः कहा, “लेकिन मैंने इसका समाधान ढूँढ़ लिया है—यदि तुम साथ दो तो।”

दुर्गेश कुछ अचकचा सा गया। उसके साथ की कैसी ज़रूरत? शुभेंदु ने क्या समाधान सोच रखा है? सोचते हुए उसने निःस्वार्थ भाव से कहा— “हमारी मित्रता तो आरंभ से ही दाँतकाटी रोटी के समान रही है। मुझे खुशी होगी जो मैं तुम्हारे काम आ सकूँ।”

दुर्गेश की बात सुनकर शुभेंदु बोला—“बहुत सोच-विचार के बाद मैंने ऐसा निर्णय लिया कि तुमसे पूछ लूँ। यदि तुम नंदिनी का हाथ पकड़ने को तैयार हो तो मैं उससे बात करूँ। मेरे इस प्रयास से जहाँ नंदिनी का भटकता मन और जीवन एक ठोस व स्थायी मंजिल पा लेगा, वहीं तुम्हारे जीवन का एकाकीपन भी दूर हो जाएगा और सबसे बढ़कर नहीं पिंकी को नंदिनी के ममतापूर्ण आँचल की छाया प्राप्त हो जाएगी।” शुभेंदु एक साँस में ही सब कह गया।

शुभेंदु कुछ ऐसी चाहत प्रकट करेगा इसके लिए दुर्गेश तैयार नहीं था। अतः तुरंत क्या उत्तर दे समझ न सका। कुछ सोचकर ही कहा होगा शुभेंदु ने, पर नंदिनी तो उसको चाहती है। मेरे साथ विवाह का प्रस्ताव सुनकर

उस पर क्या प्रतिक्रिया होगी? आदि बातें क्षण भर में दुर्गेश के मन-मस्तिष्क में तैर गई। उसे चुप देखकर शुभेंदु ने उसके कंधे पर हाथ रखकर अपनत्वपूर्ण शब्दों में पूछा, “कुछ धर्म संकट में पड़ गए क्या मित्र? मैंने तो दोस्ती के नाते तुमसे ऐसा चाहा है। भाग्य की सतायी नंदिनी अच्छे घर-परिवार की है। जहाँ उस दुखी लड़की की जिंदगी सँवार देने का श्रेय तुमको प्राप्त होगा, वहीं तुम्हारी कृपा से मैं भी अपनी जिम्मेदारी से मुक्त हो जाऊँगा।”

“ठीक है मैं सोचकर बताऊँगा। पर तुमको नंदिनी के मन को समझकर ही कोई कदम उठाना होगा।” दुर्गेश ने कहा तो शुभेंदु ने हौले से कहा, “कल दिन भर सोच लेना, परसों होली के दिन तुमसे हाँ की अपेक्षा रहेगी।” दुर्गेश बिना कुछ बोले अपने कमरे में आ गया।

शुभेंदु ने जब नंदिनी के समक्ष दुर्गेश से विवाह का प्रस्ताव रखा तो वह फफककर रो पड़ी। “आपने मुझ पर बहुत एहसान किए हैं, जिसका ऋण चुका सकना मुझ जैसों के लिए संभव नहीं है। एक कृपा मुझ पर और कर दीजिए। थोड़ा-सा और पढ़ा दीजिएगा तो मैं नौकरी करके आपसे अलग रहने लगूँगी।”

“पर मैं जो कह रहा हूँ उसके लिए तैयार न होने का भी कोई कारण है?” अत्यंत सहज भाव से पूछा शुभेंदु ने।

“हाँ, जो फूल एक देवता पर चढ़ जाता है उसे दूसरे पर कब चढ़ाया जाता है?” नंदिनी ने कहा। उसको आँखों से टप-टपकर अश्रु टपकते रहे।

शुभेंदु धर्मसंकट में पड़ गया। कुछ भयभीत भी हुआ, कहीं नंदिनी की पीड़ा और आँसू उन्हें विचलित न कर दें। फिर भी उसने धैर्यपूर्वक नंदिनी को समझाना चाहा, “मैं तुम्हारी पीड़ा अच्छी तरह अनुभव कर रहा हूँ नंदिनी, पर तुमको तो अच्छी तरह ज्ञात है कि मैंने जीवन भर विवाह न करने का व्रत ले लिया है। यदि तुमको मुझसे सच्चा अनुराग है तो मेरी बात मानकर दो प्राणियों का जीवन सँवार दो। नहीं-सी पंकी तुमसे अच्छी तरह हिल-मिल गई है। उस बदकिस्मत बच्ची के माँ के अभाव को पूर्ण कर दो। दुर्गेश भी तुमको पाकर निश्चय ही पिछले दिनों की पीड़ा को भुलाने का प्रयास करेगा।”

नंदिनी चुपचाप शुभेंदु की बात सुनती रही। अपनी आँसुओं से भीगी पलकें ऊपर उठाकर उसने शुभेंदु की तरफ़ देखा और अवरुद्ध कंठ से बोझिल आवाज़ में बोली—“यह जानते हुए भी कि मेरे हृदय मंदिर के देवता आप हैं, आप ऐसा कह रहे हैं।”

“जानता नहीं था, नंदिनी, पर अब जान गया हूँ। मैं बहुत विवश इनसान हूँ। यह भी जानता हूँ जिस मार्ग को मैंने चुना है वह कुछ कठिन मार्ग है। तुम जैसी शुभचिंतकों के सहयोग की अपेक्षा मुझे सदैव रहेगी, तभी मेरा मनोबल ऊँचा उठेगा और सफलता के सोपान पर मेरे कदम आगे बढ़ते जाएँगे। जिसे तुम अपना आराध्य देव समझ रही हो वह तुमसे कुछ चाह रहा है। मना मत करो, नंदिनी।” शुभेंदु ने अत्यंत आग्रहपूर्ण शब्दों में कहा।

नंदिनी कुछ बोली नहीं, झुककर उसके चरण स्पर्श किए और अपनी मौन स्वीकृति देकर धीरे-धीरे अपने कमरे की तरफ़ बढ़ गयी।

संध्या समय जब होली का हुड़दंग शांत होकर केवल मिलने-जुलने वालों की ही चहल-पहल दिखाई पड़ रही थी। शुभेंदु बाहर अधिकारियों के बीच व्यस्त थे। दुर्गेश धीरे-धीरे कदम रखते नंदिनी के कमरे की तरफ़ बढ़े। वह किसी मैगजीन को पढ़ने में व्यस्त थी। पदचाप ने उसका ध्यान दरवाज़े की तरफ़ खींच लिया। उसने देखा दुर्गेश चुपचाप कुछ अंदर कुछ बाहर की स्थिति में खड़े हैं। आज पहली बार उनको इस तरह देखकर उसके चेहरे पर भी कुछ घबराहट और लज्जा मिश्रित भाव उभर आए। फलस्वरूप वह तुरंत पूर्ववत् स्वच्छंद भाव से कुछ बोल न सकी। बोलने की पहल दुर्गेश ने ही की—“सुबह के बाद से दिखलायी नहीं पड़ी, रंग भी नहीं डाला।”

“हाँ, मन नहीं हुआ।”

“जानता हूँ, मनुष्य विवश हो जाता है। आज एक बात तुमसे साफ़-साफ़ पूछना चाहता हूँ। शुभेंदु ने मुझसे कुछ कहा था, पर मैंने सोचा तुम्हारा मन जान लूँ तभी उनको जवाब दूँ। जैसा शुभेंदु चाहते हैं, क्या तुम उसके लिए तैयार हो?” नंदिनी के पलंग के करीब पड़ी कुर्सी पर बैठते हुए दुर्गेश ने कहा।

“हाँ।”

“मन से।”

“जीवन में ठोकरें खाते-खाते अनुभव ने इतना सिखला दिया है कि ईश्वर की जितनी कृपा हो उसे ही बहुत समझना चाहिए। देखिए, मेरे लिए तो मौत के दरवाजे भी बंद हैं।”

“मौत तो जब जिसे ले जाना चाहती है कोई रोक नहीं पाता, नंदिनी। मनुष्य तो केवल बचाने का माध्यम बन जाता है।” दुर्गेश ने अत्यंत भावुक आवाज़ में कहा—“शुभेंदु को मैंने उत्तर नहीं दिया, केवल तुम्हारा मन अपने प्रति जानने के लिए ही रुका हूँ। मैं नहीं चाहता कि मुझे तुम तमाम ज़िंदगी बोझ समझकर अनिच्छा से निबाहो। यदि तुम्हें मंजूर नहीं तो साफ़-साफ़ मना कर दो, मुझे बुरा लगाने का कोई प्रश्न नहीं है। यह सच है कि हम तुम एक-दूसरे को अच्छी तरह समझ चुके हैं। जहाँ पिंकी तुम्हारी गोद में माँ का अभाव पूर्ण कर लेगी, वहीं तुम्हारे साथ मैं भी फिर से अपनी खोयी खुशी और जीवन पा लूँगा।” बिना रुके दुर्गेश बोलता गया।

अब तक नंदिनी अपने को भलीभाँति समझा चुकी थी। अतः उसने अपनी मौन स्वीकृति दे दी।

हठातः शुभेंदु ने प्रवेश करते हुए मुस्कराकर कहा, “वाह कितने अच्छे समय पर मैं पहुँचा” और कहने के साथ ही, अपने हाथ में लिए अबीर-गुलाल दोनों पर बरसाते हुए उसने हर्ष विभोर होकर कहा—“फागुन की यह रंगीन बरसात तुम दोनों के लिए।”

विवाह के पश्चात विदा होती नंदिनी से शुभेंदु ने अवरुद्ध कंठ से कहा था—“अपने जन्मदिन व भैयादूज के पावन पर्व पर अपने इस धर्मभाई के पास अवश्य आ जाना और हाँ फागुन की रंगीन बरसात भी भूलना मत।”

टन-टन-टन-टन दीवाल घड़ी ने चार बजाए तो दुर्गेश चौंक पड़े। अतीत में बिखरे-बिखरे तमाम रात ऐसे बीत गई कि उसे पता भी न चल सका।

पाँच बजे ट्रेन जाती है तुरंत उठना होगा। सोचते हुए दुर्गेश उठ गया। कल से इस घर का अकेलापन, नंदिनी की मुस्कुराहट और पिंकी की चहलकदमी के आगे झाँकने का नाम न लेगा—सोचकर वह मुस्करा पड़ा।

सुगंधित अंतर्मन

यशार्थ के कोर्ट जाने के पश्चात मणि काफी देर तक लॉन में टहलती रही। शरद-ऋतु में पुष्पों की शोभा अत्यंत मनोहारी थी। गुलाब के पीले, गुलाबी और सुर्ख लाल रंग के फूल पौधों में लदे झूम रहे थे। गेंदा के पीत वर्ण के गुच्छेदार पुष्प भी अपनी पीतांबरि आभा बिखेर रहे थे। लॉन में दूसरी तरफ प्रकृति के अनुपम उपहार गुलदाउदी और डेलिया अपने विभिन्न चटक व शोख रंगों में उद्यान की शोभा में चार चाँद लगा रहे थे। सब मिलाकर जिलाधिकारी मिस्टर सिन्हा के बँगले की रौनक कुछ पृथक ही थी। कुछ देर टहलने के बाद मणि बँगले के अंदर अपने बेडरूम में आ गई। कुछ करने की इच्छा नहीं हुई तो चुपचाप पलंग पर लेट गई। हठात उसकी सहेली अंजली यादों में छा गई...जिसका पत्र दो दिन पूर्व आया था। पत्र में उसने मंसूरी की घटना का जिक्र करते हुए लिखा है...मणि, वह घटना कितनी महत्त्वपूर्ण सिद्ध हुई...जिसने तुझे अपना खोया प्यार, सम्मान और प्रतिष्ठा सब कुछ प्राप्त करा दिया। तू सचमुच भाग्यशालिनी है मणि...अंजली के पत्र को स्मरण करती मणि धीरे-धीरे अपने अतीत में खोती गई।

एम.ए. प्रथम वर्ष में अध्ययनरत मणि की सबसे प्रिय सहेली कनिका थी। यद्यपि कनिका धनाढ्य परिवार की थी और मणि साधारण, मध्यम परिवार की सीधी-सरल स्वभाव वाली लड़की थी फिर भी दोनों पक्की सहेलियाँ थीं।

अध्ययन संबंधी नोट्स आदि के आदान-प्रदान के लिए कभी कनिका मणि के यहाँ चली जाती तो कभी मणि कनिका के यहाँ आ जाती। कनिका का बड़ा भाई यशार्थ अपना अध्ययन पूर्ण कर प्रशासनिक प्रतियोगिताओं में

बैठने की तैयारी कर रहा था। उसने मणि को अपने यहाँ कनिका से मिलने आते कई बार देखा था। उसे पसंद भी करता था, लेकिन कभी उससे बात करने का अवसर नहीं मिल सका था। हाँ कभी-कभी कनिका से उसके बारे में अवश्य बात कर लेता था। बाद में कनिका को अंदाज़ा लग गया था कि भइया मणि को पसंद करने लगे हैं। मणि उसकी सहेली थी लेकिन वह नहीं चाहती थी कि यशार्थ उससे किसी प्रकार का संपर्क बढ़ाए।

लेकिन कनिका के न चाहने पर भी एक दिन यशार्थ को मणि से बात करने का अवसर मिल ही गया। मणि कनिका के पास कुछ अध्ययन संबंधी बात करने व नोट्स लेने आई थी। कनिका घर पर नहीं थी। वह अपनी मौसी के यहाँ चली गई थी। मणि वापस जाने को मुड़ी ही थी कि यशार्थ सामने आ गया—“आप जा रहीं हैं क्या? कुछ देर इंतज़ार कर लीजिए, कनिका आती ही होगी।”

“पता नहीं कब तक आए, मैं फिर आ जाऊँगी। बता दीजिएगा मैं आई थी।” कहकर मणि जाने के लिए दो कदम आगे बढ़ गई।

“ठीक है चली जाइएगा...लेकिन दो मिनट तो रुक जाइए, आपसे कुछ ज़रूरी बात करनी है।” यशार्थ के कहने पर मणि कुछ संकोच में पड़ी, पर रुक गयी। उसे अनुमान लग गया था कि यशार्थ क्या कहना चाहता है? पिछले दिनों जब कभी वह कनिका के पास आती और यशार्थ पास रहता तो...उसे उसकी आँखों में अपने लिए कुछ पृथक् भाव व संदेश दिखाई देते। वह झेंपकर नज़रें नीची कर लेती। “मणि जी, यदि मैं गलत नहीं हूँ तो संभवतः अब तक आप जान चुकी होंगी कि मैं आपको कितना पसंद करता हूँ? जब मैंने आपको पहली बार देखा था तभी मेरे अंतर्मन ने स्वीकार कर लिया था कि आप सिर्फ मेरे लिए हैं। ऐसा मैं किस अधिकार के साथ सोचता हूँ, यह तो आगे समय ही बताएगा।”

यशार्थ की बात सुनकर मणि कुछ सहम सी गई...उसका मौन संदेश तो उसने पहले ही भाँप लिया था लेकिन खुलकर जुबान से उसने आज पहली बार कहा था। इस समय यहाँ कुछ इस तरह की बात की उसने अपेक्षा नहीं की थी...फिर भी संयत होकर बोली—“आपकी समझ में यदि मैं आपके इतने करीब हो सकती हूँ तो यह मेरा अहोभाग्य होगा। लेकिन

सच मानिए मैं स्वप्न में भी ऐसा नहीं सोच सकती...आप लोग इतने बड़े और हम लोग..." "मणि जी, इस तरह की बातें शोभा नहीं देती। प्यार करने वाले छोटा-बड़ा, धनी-गरीब यहाँ तक कि धर्म-मज़हब भी नहीं देखते।" यशार्थ ने मणि की बात बीच में ही काटकर कहा—"बस इतना जानना चाहूँगा कि आप भी मुझे पसंद करती हैं या नहीं?" मणि कुछ बोली नहीं...हाँ यशार्थ की तरफ़ देखकर अपनी पलकें झुकाकर हाँ का मौन संदेश दिया और बाहर निकल गई।

इस घटना के बाद यशार्थ और मणि कई बार मिले। दोनों ने ढेर सारे प्यार के वायदे किए। एक दूसरे का जीवन-भर साथ निभाने का वचन लिया और दिया। कुछ समय बीता। मणि और कनिका का एम.ए. प्रथम वर्ष पूर्ण हुआ। उधर यशार्थ का भी आई.ए.एस. में चयन हो गया। जहाँ उसके आई.ए.एस. होने पर मणि को गर्व व खुशी की अनुभूति हुई...वहीं मन में एक भय भी व्याप्त हो गया...कहीं यशार्थ इतना गौरवशाली पद पाकर बदल न जाएँ। पर उसने अपने भय को प्रच्छन्न ही रखा...समय स्वयं बताएगा।

मणि की पसंद उसके माता-पिता को ज्ञात हो चुकी थी। यद्यपि वे यह जानते थे कि इतने ऊँचे और अभिमानी परिवार में, वह भी जब लड़का आई.ए.एस. हो, उसकी पसंद के लिए कोई स्थान नहीं होगा। फिर भी बेटी का मन रखने के लिए उसके पिता शंकरलाल विवाह का प्रस्ताव लेकर यशार्थ के बँगले पर गए। वह अच्छी तरह समझ रहे थे कि यशार्थ के पिता यशवंत सिन्हा और उनके स्तर में ज़मीन-आसमान का अंतर है। बात बनने की संभावना भी नहीं के बराबर है, फिर भी एक बार प्रयास करने में हर्ज़ ही क्या है। लड़की के बाप को तो एक नहीं सैकड़ों दरवाज़ों पर रिश्ते के लिए भटकना पड़ता है।

यशवंत सिन्हा को जब शंकरलाल के आने का कारण ज्ञात हुआ तब उन्हें कतई विश्वास नहीं हुआ। यह दो कौड़ी की हैसियत वाला आदमी क्या सोचकर अपनी लड़की की शादी का प्रस्ताव लेकर आने की हिम्मत कर बैठा? उन्होंने शंकरलाल से स्पष्ट शब्दों में कहा—"देखिए, मैं अपने स्टेटस के अनुरूप ही परिवार और पोजीशन चाहता हूँ।"

उनकी बात को सुनकर और सब कुछ समझते हुए भी शंकरलाल ने पुनः सहज भाव से विनीत स्वर में कहा—“आपका कथन सत्य है...मैं तिनके भर भी आपके स्टेटस के बराबर नहीं हूँ। पर एक कारण से मैं यहाँ आने को विवश हुआ। आपके सुपुत्र यशार्थ और मेरी बेटी मणि दोनों एक दूसरे को बहुत अधिक पसंद करते हैं।”

“मैं इस तरह की वाहियात बातों को महत्त्व नहीं देता। इस उम्र में यह सब चलता ही रहता है। समय के साथ सब ठीक हो जाएगा। भावनाओं में बहकर मैं ऐसा कोई कदम नहीं उठा सकता, जो मेरे स्टेटस के अनुकूल न हो।” थोड़ा रुककर उन्होंने पुनः कड़वे शब्दों में कहा—“अपनी बेटी को समझा दीजिए...इतना ऊँचा ख्वाब देखने का ख्याल छोड़ दे और हाँ अब इस उद्देश्य से मेरे दरवाजे पर आने का कष्ट मत करिएगा।” उनकी बातों से अहंकार की बू आ रही थी। उनके इस अभद्र व्यवहार से शंकरलाल को पीड़ा पहुँची। आशान्वित तो वह बिलकुल नहीं थे लेकिन इस तरह के अशोभनीय आचरण की भी उन्हें उम्मीद नहीं थी। शंकरलाल जाने को उठ खड़े हुए।

इस घटना के तुरंत बाद यशार्थ मणि से मिला और धैर्य बँधाते हुए बोला—“कल पिताजी की बातों के कारण परेशान मत होना। तुम जानती हो कि मैं उनका अकेला बेटा हूँ और मुझसे ही वह अपने सभी सपने पूरे करने चाहते हैं। अभी मैंने उनसे कुछ नहीं कहा है सिवाय इसके कि अगले पाँच वर्षों तक मुझे विवाह नहीं करना है...अतः हमें अपनी मंजिल के लिए प्रतीक्षा करनी होगी।”

मणि ने कुछ उदास होकर कहा—“तुम ठीक कहते हो यशार्थ...माता-पिता की आकांक्षा का सम्मान करना ही चाहिए। हाँ तुमने पाँच वर्ष तक प्रतीक्षा करने की बात कही है...मैं पाँच-सात जन्मों तक तुम्हारी प्रतीक्षा करती रहूँगी। मेरा प्यार सच्चा और पवित्र होगा तो तुम मुझे जरूर मिलोगे।” थोड़ा रुककर मणि ने पूछा—“मंसूरी कब जा रहे हो?”

“परसों जाना है। सच मानो मणि वहाँ तुमको बहुत याद करूँगा।”

मणि का मन भी भर आया। उसने अश्रुपूर्ण नेत्रों से यशार्थ की तरफ देखा और उसके वक्ष पर सिर टिका कर अवरुद्ध कंठ से बोली—“मुझे

पूरा विश्वास है यशार्थ हमारे सपने और वायदे शीघ्र सत्य में परिणत होंगे।" उसकी बात के प्रत्युत्तर में यशार्थ ने मणि की हथेलियों पर एक चुंबन अंकित किया और न चाहते हुए भी दोनों को एक-दूसरे से विदा लेनी पड़ी।

समय बीतता रहा...कनिका और मणि का एम.ए. पूर्ण हो गया। मणि ने प्रथम श्रेणी में एम.ए. उत्तीर्ण किया जबकि कनिका की द्वितीय श्रेणी रही। मणि ने विश्वविद्यालय में रिसर्च के लिए आवेदन पत्र दिया तो उसे प्रोफेसर प्रकाश मंडल के अंडर में शोध कार्य की स्वीकृति मिल गई। लगभग दो ढाई वर्ष और बीत गए। यशार्थ की ट्रेनिंग पूर्ण होकर लखनऊ में नियुक्ति हो गई थी। इस अवधि के मध्य यशार्थ कई बार मणि से मिला, लेकिन विवाह पर कोई बात नहीं की...शायद उचित अवसर की प्रतीक्षा में था। मणि ने भी कोई जिक्र करना ठीक नहीं समझा। उसके प्रति यशार्थ के स्वभाव में कोई परिवर्तन नहीं आया है, इसी बात से वह संतुष्ट थी।

मणि के कॉलेज की प्रधानाचार्य मिसेज रोहिणी शर्मा कई बार से अपनी अध्यापिकाओं के साथ किसी पहाड़ी स्थान पर भ्रमण का कार्यक्रम बनाना चाह रही थीं लेकिन कुछ न कुछ रुकावट आ ही जाती थी। पर इस बार संयोग से निर्विघ्न उनका कार्यक्रम बन गया। वह अपनी नौ अध्यापिकाओं के साथ जिसमें मणि भी शामिल थी, मंसूरी के लिए निकल पड़ी।

मंसूरी में पंद्रह दिन रुकना था। इन पंद्रह दिनों के समय में किसी ने एक मिनट का समय भी व्यर्थ नहीं जाने दिया। बोटिंग करने और सभी दर्शनीय स्थानों का भ्रमण करने के साथ ही मेन मार्केट तथा फुटपाथ की दुकानों से शॉपिंग भी खूब की गई। सभी ने मनचाही चीजें खरीदीं। मणि ने भी अपने परिवार के सदस्यों के लिए कुछ न कुछ खरीदा। यशार्थ के लिए भी एक पुलोवर व टॉई ली।

घूमने-घामने में समय ऐसा पंख लगाकर उड़ गया कि किसी को पता ही नहीं चला और वापस जाने का भी समय आ गया। किसी की इच्छा लौटने की नहीं कर रही थी, जो स्वाभाविक था। इतने ठंडे व शीतल स्थान से तपते लू-धूप वाले स्थान में जाने को किसका मन होता? पर वापस तो जाना ही था। अतः निश्चित समय पर दोनों गाड़ियाँ वापसी की यात्रा पर चल पड़ीं। अभी गाड़ी 25-30 किलोमीटर ही आगे बढ़ी थी कि रास्ते में

एक एम्बेसडर कार दुर्घटनाग्रस्त उलटी पड़ी दिखी। मिसेज रोहिणी ने अपनी दोनों गाड़ियाँ रुकवा दीं। सबने दुर्घटनाग्रस्त कार के पास जाकर देखा। केवल दो व्यक्ति थे और दोनों गाड़ी के अंदर रक्त से लथ-पथ बेहोश पड़े थे। दोनों टैक्सी ड्राइवरों ने सँभालकर उन्हें बाहर निकाला। एक तो शायद, गाड़ी का ड्राइवर था लेकिन दूसरे को देखकर मणि स्तब्ध रह गई..वह यशार्थ थे। नब्ब तो दोनों की चल रही थी लेकिन खून इतना निकल चुका था कि अधिक देर करना घातक सिद्ध हो सकता था। अतः अविलंब दोनों गाड़ियाँ घायलों के साथ पुनः मंसूरी लौट पड़ी। उस दिन मंसूरी में ही रुकना पड़ा। वहाँ के डॉक्टर आलोक सिंह ने यथासंभव सभी उपयुक्त उपचार के बाद उनकी नाजुक हालत को देखते हुए तुरंत दिल्ली ले जाने की सलाह दी। अतः वे लोग अविलंब दिल्ली को चल पड़े। जहाँ अखिल भारतीय आयुर्विज्ञान संस्थान में उन्हें भरती करा दिया गया और साथ ही दोनों के घर वालों को इस घटना की सूचना दे दी गई।

पता करने पर मणि को ज्ञात हुआ कि यशार्थ किसी सरकारी कार्य से मंसूरी आया था। वापस लौटते समय यह दुर्घटना घट गई। दूसरा घायल व्यक्ति उसका ड्राइवर था। फोन द्वारा खबर पाकर जब यशार्थ के माता-पिता व बहन कनिका दिल्ली पहुँचे तब तक यशार्थ होश में आ चुका था पर अभी तक वह सघन चिकित्सा कक्ष में ही रखा गया था।

बेठे के पूरे शरीर को पट्टी, प्लास्टर और खप्पचियों से बँधा-ढका देकर मिस्टर और मिसेज सिन्हा के तो होश ही उड़ गए। उन्होंने घबराकर मणि से पूछा—“सब ठीक तो है।” उन्हें धैर्य बँधाती मणि ने कहा—“आप लोगों को घबराने की ज़रूरत नहीं है...डॉक्टर ने बताया है अब यशार्थ खतरे से बाहर है।” पूरी घटना की जानकारी होने के बाद मिसेज सिन्हा ने मणि को हृदय से लगाकर अवरुद्ध कंठ से कहा—“बेटी, यशार्थ को इतने बड़े संकट से उबारकर तुमने हमारे ऊपर बहुत बड़ा एहसान किया है। यदि तुम समय पर न पहुँचती तो...”

उनकी बात बीच में ही काटकर मणि ने कहा—“ये सब ईश्वर की कृपा है। कष्ट देकर उसका निवारण करने वाले भी वही हैं।” थोड़ा रुक कर मणि ने पुनः कहा—“आप बहुत थकी हैं आँटी, चलिए थोड़ा आराम

कर लीजिए।” कनिका ने भी सहेली को बाहों में भर लिया—“तुमने भइया के प्राण बचाए हैं। मैं समझ नहीं पा रही कि किन शब्दों में तुम्हारा आभार व्यक्त करूँ। मैंने तुम्हारे साथ अच्छा व्यवहार नहीं किया था...मुझे माफ़ करना।”

सहेली की बात सुनकर मणि ने सहज भाव से कहा—“तुम पता नहीं क्या कह रही हो कनिका। मैं तो बस इतना जानती हूँ कि मैंने जो कुछ किया है, मात्र कर्तव्य समझकर जिससे कतराना इनसानियत का अपमान करना था।”

दूसरी तरफ़ खड़े यशवंत सिन्हा भी कृतज्ञ नेत्रों से मणि की तरफ़ देख रहे थे। जैसे कहना चाह रहे हों...मेरा रोम-रोम तुम्हारा ऋणी है बेटी।

मणि ने देखा और पाया कि इस घटना ने पलक झपकते ही उस बड़े घर के परिवार के प्रत्येक सदस्य के रुख को बदल दिया है। उसके कानों में कनिका और उसके पिता के कहे गए कटु वाक्य बड़ी देर तक गूँजते रहे...आज ये ही लोग उसके सामने पश्चाताप से पूर्ण दुखी व अनुग्रहीत हैं और बार-बार कृतज्ञता व्यक्त कर रहे हैं।

स्वस्थ होकर यशार्थ दिल्ली से घर आ गया। पूर्ण रूप से स्वस्थ होने में उसे कुछ समय और लग गया। अपनी दौलत और स्टेडीस पर अहंकार करने वाले यशवंत सिन्हा के पूरे परिवार को जैसे इस कष्टप्रद घटना से सबक मिल गया हो। कोई कितना भी शक्तिमान क्यों न हो, कहीं न कहीं उसे झुकना ही पड़ता है। यशवंत सिन्हा का मन तब और पश्चाताप व ग्लानि से भर आता, जब उन्हें अपने उस अहंकार पूर्ण व्यवहार का स्मरण आता जो उन्होंने मणि के पिता के साथ किया था। वह अपनी बेटी की शादी का रिश्ता लेकर आए थे। उन्होंने कोई गुनाह नहीं किया था मगर वे तो उन पर बरस पड़े थे। कितना अशोभनीय और उपेक्षित व्यवहार किया था उन्होंने शंकरलाल के साथ...यहाँ तक कि अपने दरवाजे पर दुबारा न आने की चेतावनी भी दे दी थी...आज उन्हीं की बेटी ने उनके इकलौते लाडले पुत्र की जान बचाई...सोचते हुए यशवंत सिन्हा की आँखें अश्रुपूर्ण हो आईं। आत्मग्लानि और पश्चाताप की पीड़ा से भरे वे अपनी पत्नी के साथ प्रायश्चित्त स्वरूप मणि के यहाँ गए। उसके पिता से अपने दुर्व्यवहार के

लिए क्षमा माँगते हुए उन्होंने कहा—“मैं अपने व्यवहार के लिए बहुत शर्मिंदा हूँ...मुझे क्षमा करिए भाई साहब।” पुनः क्षोभ प्रकट करते हुए सिन्हा ने कहा—“धन और पद के मद में हम इन्सानियत के मार्ग से भटक गए थे, लेकिन अब आपकी बेटी और हमारी होने वाली बहू ने हमें सुपथ का ज्ञान करा दिया...हमारी आँखें खोल दी हैं। हमारे बीच खड़ी दौलत और अहंकार की उस दीवार को ढहा दिया है, जिसने अब तक हम लोगों को पृथक् कर रखा था...अब हम दो नहीं एक परिवार हैं।” अबाधगति से यशवंत सिन्हा बोलते ही गए। उन्होंने अनुभव किया कि उनका अंतर्मन इन्सानियत की सुगंध से सुगंधित हो उठा है। शंकरलाल ने भी गर्वान्वित होकर उनके कथन को स्वीकारा।

अपने परिवार के परिवर्तित रुख के बाद यशार्थ मणि से मिला तो बहुत प्रसन्न था। उसके हाथों को अपने हाथों में लेकर अत्यंत आत्मीय एवं अनुग्रहीत भाव से बोला—“सचमुच मणि, तुमने मुझे नया जीवन दिया है...अन्यथा।”

मणि ने अपना दूसरा हाथ यशार्थ के होंठों पर रख दिया—“खबरदार यशार्थ, जो कोई अशुभ बात जुबान पर लाए।” यशार्थ ने अपनी गलती स्वीकार करते हुए कहा—“एक बात है मणि, हमारे मिलन की बात बड़ी सरलता से बन गई।”

मणि ने बोझिल आवाज़ में कहा—“सरल मत कहो यशार्थ...हमें बहुत कड़ी परीक्षा से होकर गुज़रना पड़ा है।”

समझौता

नौकरी से अवकाश प्राप्त किए युग को छह वर्ष हो चुके थे। बेटा आशीष मुंबई में इंजीनियर है तथा दोनों बेटियाँ रेखा व रेणु क्रमशः दिल्ली व गाजियाबाद में हैं। युग को अपने स्थायी निवास लखनऊ में ही पत्नी सुधा के साथ रहना अधिक अच्छा लगता। लेकिन समय-समय पर वे लोग अपने बेटे और बेटियों के पास भी रह आते। अभी गत ग्रीष्मावकाश में तीनों बच्चे सपरिवार आकर लगभग एक माह रह गए थे। उनके जाने से घर में सन्नाटा सा हो गया था लेकिन फिर धीरे-धीरे मन और घर नार्मल होता गया।

घर में अकेले रहने से आपस में बातचीत होती रहती। कभी-कभी किसी बात पर बहस भी हो जाती। युग ने बात ही बात में कहा—“सुधा, सचमुच मानव जीवन क्षणभंगुर है। जीवन के सफर में कब किसका साथ छूट जाए, कोई जानता नहीं।” सुधा नाराज़गी प्रकट करती हुई कहती—“इस तरह की बातें न किया करो युग, मुझे बिलकुल पसंद नहीं।”

“यह तो एक आम बात है। किसी विशेष को लेकर तो मैंने कहा नहीं...जो पसंद या नापसंद का प्रश्न हो।” युग ने अत्यंत स्वाभाविक ढंग से कहा।

लेकिन इस वार्तालाप के तीसरे-चौथे दिन ही किसी अन्य बात को लेकर फिर जोरदार बहस हो गई। युग ने क्रोधित होकर कहा—“ज़िंदगी शांति से गुज़रे तो ठीक है वरना मर जाना ही बेहतर है।”

सुधा फिर बिगड़ पड़ी—“अगर अब आगे कभी अपने लिए बदजुबान बोले तो मुझसे बुरा कोई न होगा। इस बात को गाँठ बाँध लो।” युग को अपनी गलती का आभास हुआ...उन्हें सुधा के सामने अपने लिए मरने जीने

की बात नहीं बोलनी चाहिए थी। वह जानते थे सुधा इस तरह की बातें कभी पसंद नहीं करती, अतः साँरी बोलते हुए बोले—“नाराज मत हो मैं माफ़ी माँगता हूँ। लेकिन तुम तो यह बात जानती हो कि जो अपने को कोसते हैं उनकी आयु लंबी होती है।”

“ईश्वर करें ऐसा ही हो।” सुधा ने कहा पर तुरंत ही तेवर बदलकर बोली—“मैं चाहती हूँ कि पहले मैं इस संसार से विदा लूँ ताकि हर समय मुझसे बहस करने वाले आपको मेरी कमी का एहसास हो। तब आप मन से मुझे याद करेंगे।”

“लेकिन तुम्हें जाने ही कौन देगा? अग्नि को साक्षी मानकर जिस डोर से बाँधकर तुमको ले आया हूँ वह इतनी कमज़ोर नहीं कि तुम तोड़कर चली जाओ।” मुस्कराते हुए युग ने कहा। मन में आया...मैं सुधा से बड़ा हूँ पहले मुझे ही जाना चाहिए...लेकिन सुधा के क्रोध को स्मरण कर चुप रह गए।

इस बातचीत को अधिक दिन नहीं हुए थे कि सुधा पर अप्रत्याशित वज्र सा पहाड़ टूट पड़ा। कहते हैं अक्सर जुबान से निकली बात पर सरस्वती विराज जाती हैं और बात सत्य में परिणत हो जाती है। लेकिन यहाँ तो जैसे सोची हुई बात पर ही सरस्वती का वास हो गया। युग ने तो बस सोचा था...बड़ा मैं हूँ पहले मुझे जाना चाहिए। लेकिन शायद सरस्वती जी अगल-बगल ही टहल रही थी...जो युग के मन में सोची बात पर भी आधिपत्य जमा लिया। दो दिन की खाँसी और श्वास फूलने की अस्वस्थता ने युग को इहलोक से परलोक में पहुँचा दिया। सुधा किंकर्तव्यविमूढ़ सी देखती ही रही गई। समझ न सकी कि यह कैसा पहाड़ उस पर टूटा। विक्षिप्त सी वह पति के निर्जीव पार्थिव शरीर पर गिर पड़ी। अभी-अभी गए बच्चे फिर वापस आए और अपने पिता का अंतिम संस्कार व पूजा-पाठ संपन्न करा के माँ को साथ लेते गए।

सुधा का मन कहीं नहीं लगता। चौवालिस वर्ष तक पति का साथ...शायद इतना ही समय और मिले तो भी वह उनको भुला न सकेगी। एक-एक दिन के एक-एक क्षण की स्मृति मन-मस्तिष्क में अंकित थी जो एकाध पल को भी मन से हटती नहीं। पति के साथ के दिन कितने सुंदर और

अमूल्य थे...अब सब जैसे स्वप्न बनगया...सोचती हुई सुधा रो पड़ती...युग आपने तो कहा था कि हम और आप उस मज़बूत डोर से बँधे हैं जो कभी टूट नहीं सकता। फिर आज आप हमें नितांत अकेला छोड़कर क्यों चले गए?

आशीष माँ को दुखी देखकर समझाता...“माँ, आपको अपने को सँभालना होगा। हम लोगों के लिए अब आप ही माँ-पिता दोनों हैं। आपको दुखी देखकर हम भी धैर्य खोने लगते हैं।” बहू कंचन भी माँ को भरसक समझाती और अपनी तरफ से अधिक से अधिक समय उनके साथ व्यतीत करने का प्रयास करती। लेकिन जब बेटे-बहू अपने-अपने ऑफ़िस चले जाते और बच्चे स्कूल में रहते, उस समय का अकेलापन उसके कष्ट को और बढ़ा देता। कभी-कभी तो उसे दिवास्वप्न सा लगता...युग आकर सामने खड़े हो गए हैं और उसके आँसू पोंछते हुए कह रहे हैं—सुधा मन को दुखी मत करो। तुमको दुखी देखकर मुझे अच्छा नहीं लगता। मैं तुम्हारे पास ही हूँ सुधा, कहीं दूर नहीं गया हूँ। बस अच्छे मन से मुझे याद किया करो।

सुधा चौंक जाती...आँखें फाड़कर चारों तरफ़ देखने लगती, पर न युग दिखते और न उनकी आवाज़। विवश वह फिर अतीत में डूबने-उतराने लगती। उसे पीड़ा भी होती और पति के साथ के दिन के स्मरण से सुख की भी अनुभूति होती। कष्ट और सुख का अद्भुत संगम बन जाता, पति की याद।

कुछ दिन आशीष के पास रहकर सुधा ने दोनों बेटियों के पास जाने की इच्छा व्यक्त की। उसे लगा लड़कियाँ घर पर रहती हैं। इसलिए वहाँ दिन का अकेलापन नहीं खलेगा। आशीष ने माँ को बहनों के पास पहुँचा दिया...इस वायदे के साथ कि जल्दी ही उन्हें आकर वापस ले जाएगा। बारी-बारी करके वह रेखा और रेणु के पास रहीं। कुछ ठीक लगा। वह समझ रही थी कि तीनों बच्चे अपने पिता को याद करके दुखी हो जाते हैं। वह यह भी समझती थी कि बच्चों को पिता के न रहने का कष्ट तो है पर यह कष्ट उनके जीवन का एक हिस्सा है, उनका जीवन नहीं। जाहिर है सबके पास अपना परिवार है, नौकरी है और समाज है, जिसके प्रति कर्तव्य पूर्ण करना उनकी प्रथम प्राथमिकता है, पर उसका तो यह कष्ट जैसे अपार

हैं, जिससे पार पा सकना उसे अपने वश की बात नहीं लगती। हठात उसके अंतर्मन ने उसके दुखी मन को चेताया—सुधा, पति की याद व जीवन से प्रेरणा लेकर अपने जीवन को हलकेपन से जीने का प्रयास करो...इससे तुम पति की स्मृति के साथ भी सहज जीवन जी सकोगी।

इसी के साथ ही सुधा को स्मरण हो आया...उसकी कहानियाँ लिखने में रुचि देखकर युग कहते—“सुधा, तुममें भगवान ने एक अच्छी प्रतिभा दी है। मैं चाहता हूँ कि तुम अपनी इस प्रतिभा को दिन-ब-दिन उभारो,” जब भी उसकी कहानियाँ पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित होतीं, वह सबको दिखाते और स्वयं भी अत्यंत रुचि के साथ पढ़ते।

उसे यह भी स्मरण हो आया कि उसके जन्मदिन पर हर वर्ष युग उसे पार्कर पेन अवश्य भेंट करते...एक-एक करके ढेर सारे पेन उसके पास इकट्ठे हो गए थे। सुधा के मन को सचमुच जैसे प्रेरणा मिली। पति की आकांक्षा के लिए उसे अपनी सुप्त प्रतिभा पुनः जागृत करनी होगी।

अतः सुधा ने बच्चों से इच्छा व्यक्त की कि वह कुछ दिन लखनऊ रहना चाहती है। आशीष ने मना नहीं किया अपितु माँ की इच्छा को रखने के लिए उन्हें लेकर स्वयं लखनऊ आ गया। अपने घर की चौखट के अंदर पाँव रखते सुधा को लगा जैसे यह चौखट उसके आने की प्रतीक्षा कर रही थी। मन दुखी होने के बावजूद उसे यहाँ आकर अच्छा लगा। कुछ दिन साथ रहकर जब आशीष ने माँ से चलने को कहा तो सुधा ने कहा—“बेटे, मैं कुछ दिन और यहाँ रहना चाहती हूँ।”

“मेरी छुट्टियाँ खत्म हो गई हैं माँ...आप अकेली यहाँ कैसे रह पाएँगी? हम सबका मन आप पर लगा रहेगा...प्लीज ऐसा न करिए माँ।” अत्यंत स्नेहपूर्ण आग्रह किया आशीष ने।

सुधा ने उसे समझाया...“बेटा, वह जो मुन्नी आँटी है न, उनसे मेरी बात हो गई है। वह भी अकेली हैं, मेरे साथ रहने को तैयार हैं। कुछ दिन बाद तुम्हारे पास आ जाऊँगी।”

आशीष ने देखा कि माँ किसी तरह भी इस समय उसके साथ जाने को तैयार नहीं हैं तब उसने उनके रहने, भोजन आदि की पूर्ण व्यवस्था की और जल्दी ही आकर ले जाने का वायदा लेकर चला गया। सुधा ने घर की अच्छी तरह से सफाई करके अपने रहने की पूर्ण व्यवस्था की।

फिर वह अपने प्रेरणा, स्रोत, अपने पति की स्मृति को मन में संजोए अपने को लेखन में व्यस्त रखने लगी।

उसके घर से थोड़ी दूर पर छोटे बच्चों का एक कॉनवेंट स्कूल था जिसकी प्रिंसिपल से उसकी पहले से जान-पहचान थी। उन्होंने उसे अपने यहाँ टीचर के लिए ऑफ़र किया। सुधा ने उनके ऑफ़र को स्वीकार कर लिया।

अब अपने लेखन के साथ छोटे बच्चों को पढ़ाना सुधा को अच्छा लगता। लंबे अंतराल के पश्चात अब पुनः उसकी कहानियाँ नियमित रूप से पत्र-पत्रिकाओं में छपने लगी। वह भरे मन से हर दिन युग को याद करके कहती—“युग, आपने हमें तन्हा कर दिया, लेकिन आपसे मिली प्रेरणा और आपकी स्मृति ने मुझे सहारा दिया है। जीवन के शेष दिन व्यतीत करने का मुझे संबल मिला है।” युग के बिना अपने को अपूर्ण समझकर सुधा ने अपनी प्रत्येक कहानी, उपन्यास और काव्य-कृति पर सदैव सुधा युग का मिश्रित नाम ही अंकित किया।

इधर जब रेखा और रेणु ने सुना कि माँ लखनऊ में ही रुक गई हैं तो उन्हें अच्छा नहीं लगा। लेकिन फिर यह सोचकर कि माँ की इच्छा है तो कुछ दिन रह लें, दोनों बेटियाँ चुप रहीं। पर तीनों बच्चों ने आपस में निश्चय कर लिया कि जब तक माँ लखनऊ में रहेंगी वे बारी-बारी से माँ के पास आते रहेंगे।

सुधा ने भी सोचा...बच्चे उसे कितना चाहते हैं व आदर देते हैं। उसे भी अपने बच्चों के स्नेह, प्यार और आकांक्षा का सम्मान करना है अतः वह बच्चों के पास हमेशा आती-जाती रहेगी। कभी बच्चे उसके पास आ जाएँगे...उसी स्नेहिल सुविचार के निर्णय के साथ उसने जीवन की संध्या से समझौता कर लिया।

सुबह का भूला

काफी प्रयास के उपरांत भी जब शशिधर चंद्र को बेटी की शादी शीघ्र तय होने का आसार नहीं दिखा तो उन्होंने पहले बेटे आकाश का विवाह कर देना ही ठीक समझा। क्योंकि उनका यह विश्वास भी था कि घर में शुभ कार्यों का श्री गणेश करना शेष शुभ कार्यों के लिए शुभ व आवश्यक पहल है।

आकाश की शादी के प्रस्ताव काफी समय से बराबर आ रहे थे। परंतु पहले बेटी अर्चना का विवाह करने के विचार से वह टाल-मटोल कर रहे थे। लेकिन जब अर्चना का विवाह तय होने में शशिधर को विलंब प्रतीत हुआ तो उन्होंने बेटे की शादी पहले करना उचित समझा। आकाश का गत वर्ष पी.सी.एस. में चुनाव हो गया था। अतः शशिधर चंद्र ने पहले उसकी पूरी कीमत वसूलना आवश्यक समझा। विवाह के लिए आए प्रत्येक प्रस्ताव पर आपस में विचार-विमर्श होता, फिर लड़की वालों को अच्छी तरह तौला-परखा जाता। जहाँ उन्हें दहेज का पलड़ा हलका दिखता उधर से तुरंत मुँह फेरकर इनकार करने में रत्तीभर भी मलाल नहीं होता। एक जाने माने रईस रायबहादुर उनकी दृष्टि में खरे उतरे, लेकिन लड़की पसंद न आने से वहाँ भी बात ठप्प हो गई।

एक अन्य मध्यम वर्गीय परिवार की लड़की रश्मि बाह्य रूप रंग में यथा नाम तथा गुण प्रतीत हुई। यद्यपि शशिधर चंद्र समझते थे कि यहाँ से अच्छी रकम मिलना संभव नहीं है, किंतु उन्होंने धीरे-धीरे चूस-चूस कर लेने का निश्चय किया। बात तय होने के बाद बारी-बारी से एक-एक माँग वह इस तरह से रखें कि लड़की वाला मना न कर सके...यह उनकी योजना थी। इस विचार के तहत वह रश्मि के पिता श्रीकांत से

बोले—“आपकी बेटी हमें पसंद है, अब तो हमें शादी आपके यहाँ ही करनी है। पर हम चाहते हैं कि दोनों तरफ़ से विवाह का आयोजन शानदार हो।”

“मैं किन शब्दों में आपका आभार व्यक्त करूँ...समझ नहीं पा रहा हूँ। आप जिस तरह से चाहेंगे मैं विवाह का प्रबंध उसी तरह से करने का पूरा प्रयास करूँगा।” हाथ जोड़कर अत्यंत विनम्र आवाज़ में श्रीकांत ने कहा।

“मैं चाहता हूँ कि लेन-देन की बात भी साफ़-साफ़ हो जाए।”

“मैं आपकी इच्छा व आदेश का स्वागत करूँगा...आप आज्ञा तो दें।” श्रीकांत पुनः सम्मानपूर्वक बोले।

“मैं बात साफ़ करता हूँ।” स्पष्टवादी शशिधर भी थोड़ा रुककर बोले—“आप अपनी बेटी-दामाद को नित्य प्रयोग की चीज़ें जैसे आभूषण, कलर टी.वी., स्कूटर तथा फ्रिज आदि तो देंगे ही...इसके साथ कम से कम दो लाख नकद देना आवश्यक है क्योंकि बेटे को अपने पैरों पर खड़ा करने में हमारा इतना तो लग ही गया है।”

नकद की राशि सुनकर श्रीकांत कुछ गंभीर हो गए। लड़के वालों की आदत-सी बन गई है कि लड़की के पिता के बूते पर अपनी इज़्ज़त व स्तर बनाए रखने का प्रयास करते हैं। वही हाल इनका भी है...श्रीकांत मन ही मन सोचते रहे। लेकिन कुछ बोलें इससे पूर्व ही शशिधर चंद्र ने कहा—“आजकल तो देने वाले साधारण सी नौकरी करने वाले लड़के का घर भी सामान व नकदी से भर देते हैं, फिर मेरा बेटा पी.सी.एस. है। आप अच्छी तरह से सोच लीजिए।”

उनकी बात से श्रीकांत के मर्म को चोट पहुँची, पर वह चुपचाप झेल कर अनुरोध पूर्ण आवाज़ में बोले—“मेरी बेटी को आप सबने पसंद कर लिया, इससे ज्यादा अहोभाग्य मेरा क्या होगा? मैं सब प्रबंध कर लूँगा।”

अनिच्छापूर्वक ही सही, पर चायपानी की औपचारिकता निभाने के बाद श्रीकांत घर वापस आ गया। दो दिन बाद कुछ आवश्यक बात करने के उद्देश्य से शशिधर चंद्र ने श्रीकांत को बुलवाया। इधर-उधर की दो चार बातों के पश्चात वह अपने विशेष उद्देश्य पर आए—“एक बात का आपको विशेष ध्यान रखना होगा। हम क्या ले-दे रहे हैं, यह किसी प्रकार भी प्रकट नहीं होना चाहिए।” शशिधर ने श्रीकांत को सावधान किया।

श्रीकांत समझ रहे थे। शशिधर एक सेवा निवृत्त सरकारी अधिकारी हैं और वर्तमान में समाज-सेवक नेता के रूप में कार्यरत भी। जन-समूह के मध्य दहेज-विरोधी भाषण देते हैं...अतः आवश्यक है कि सत्य पर परदा पड़ा रहे। सोचते हुए श्रीकांत ने उन्हें आश्वासन दिया—“आप बिलकुल निश्चित रहिए, लेन-देन की बात किसी के कानों में नहीं पड़ेगी।”

उनके आश्वासन से संतुष्ट शशिधर चंद्र पुनः अपने उद्देश्य पर आ गए—“हाँ, मैं तो भूल ही गया था आपसे कहना कि आजकल कंप्यूटर कितनी ज़रूरी चीजों में शामिल हो गया है। अतः अपनी बेटी-दामाद को आप कंप्यूटर देना मत भूलिएगा।”

शशिधर से कुछ कहना-सुनना व्यर्थ है। उन्हें बेटी की शादी भी तो करनी ही है...अतः उनकी माँग सुनकर श्रीकांत विचलित नहीं हुए और सहज भाव से धैर्यपूर्वक बोले—“ठीक है, जैसी आपकी इच्छा।” श्रीकांत की बात से शशिधर पूर्ण संतुष्ट हुए। लेकिन अपनी बेटी का विवाह भी शीघ्र करने के विचार से शशिधर चंद्र ने आकाश की शादी अगले लगन में करने का निश्चय किया। उनकी आकांक्षा की कद्र कर श्रीकांत ने भी बेटी के विवाह की जल्दी पर अधिक जोर नहीं दिया।

कुछ दिनों पश्चात शशिधर चंद्र को पता चला कि श्रीकांत के गाँव में अपनी काफ़ी ज़मीन है। पता चलते ही सहला-सहला कर वसूलने वाले अपने सिद्धांत को अपनाने का इरादा कर उन्होंने श्रीकांत को बुला भेजा। छिटपुट बातचीत के दौरान उन्होंने अपनी शतरंजी चाल चली—“सुना है गाँव में आपकी काफ़ी ज़मीन बेकार पड़ी है, मेरी मानिए तो उस ज़मीन को निकाल दीजिए और अपनी बेटी-दामाद को कार देने का नेक काम भी कर डालिए, कन्यादान में तो लोग पता नहीं क्या-क्या दे डालते हैं।” निःसंकोच शशिधर ने कह ही डाला। उनकी माँग सुनकर श्रीकांत जैसे आसमान से गिरे। पैरों तले धरती सरकती मालूम पड़ी। कार की माँग से मन दुविधा में पड़ गया। क्या कहें, क्या न कहें? बात इतनी आगे बढ़ चुकी है कि मना करना भी नाममुकिन है। लगता है बाप-दादों की एकमात्र निशानी बेचनी ही पड़ेगी। इसके अतिरिक्त कोई चारा भी तो नहीं है...उन्हें चुप व परेशान से देखकर शशिधर चंद्र ने कहा—“मुझे गलत न समझिए, कार मैंने

अपने लिए नहीं माँगी है। आप जो कुछ भी देंगे अपनी बेटी और दामाद को ही देंगे।”

“आप ठीक कह रहे हैं।” खीझे से श्रीकांत ने अधिक बहस करना उचित नहीं समझा। उँगली पकड़ते-पकड़ते शशिधर पंजा और कलाई तक बढ़ आए थे। आगे ईश्वर ही मालिक है। सोचते रहे श्रीकांत। चट मँगनी पट ब्याह ही ठीक रहता है। अब साँप छछूंदर जैसी बड़ी दयनीय स्थिति हो गई है पर अब उनकी बात तो रखनी ही होगी। थोड़ा समय और रुकने के पश्चात श्रीकांत अनमने मन से घर वापस आ गए।

उधर कुछ दिन पश्चात संयोग से शशिधर चंद्र की बेटी अर्चना का रिश्ता एक अत्यंत सभ्य परिवार में पक्का हो गया। लड़का वन-विभाग में फॉरेस्ट ऑफिसर था। शशिधर की हार्दिक इच्छा थी कि बेटा-बेटी दोनों की शादी साथ-साथ ही संपन्न हो जाए। शादी की तिथि निश्चित करने व लेन-देन की बात करने के लिए वह लड़के के पिता शिव प्रकाश के निवास पर पहुँचे। शशिधर ने अनुग्रहपूर्ण शब्दों में होने वाले समधी से कहा—“दोनों बच्चों के विवाह की तिथि पास-पास ही रहती तो मुझे काफी सहूलियत हो जाती।”

“मुझे कोई आपत्ति नहीं है। मैं सब कुछ आपकी इच्छा पर छोड़ता हूँ।” शिव प्रकाश सहज भाव से बोले।

“वह तो ठीक है पर मैं चाहता हूँ कि लेन-देन की बात भी हो जाए, जिससे बाद में कोई झंझट न उठे।” शशिधर चंद्र ने हिम्मत करके साफ़ बात करनी चाही।

“आप परेशान क्यों होते हैं भाई साहब? रुपया-पैसा कभी शादी के बीच में रुकावट नहीं बनेगा।” शिव प्रकाश ने उन्हें निश्चित करते हुए कहा।

उनकी बात सुनकर शशिधर तुरंत कुछ न कह सके...वहाँ से चुपचाप घर वापस आ गए। घर आकर भी उन्हें चैन न मिला। वह कुछ उलझ गए। बात साफ़ हो जाती तो ठीक था...यह लसर-पसर लटकाने वाली बातें उन्हें पसंद न थी। जो लेना-देना हो बता दें। कल जाकर उनसे साफ़-साफ़ बात कर लेनी है...उन्होंने सोचा।

दूसरे दिन काफ़ी सोच-विचार कर शशिधर पुनः शिव प्रकाश के निवास पर पहुँचे। हालचाल पूछने की औपचारिकता निभाने के बाद कुछ हिचकते हुए बोले वह—“गुस्ताखी माफ़ करना भाई साहब, पर मेरी आदत साफ़ बात करने की है। क्या सामान और कितनी नक़द राशि की व्यवस्था मुझे करनी होगी? कृपया बताने की कृपा करें।”

उनके साफ़ बात करने का आशय आखिर शिव प्रकाश की समझ में आ ही गया। लेकिन उन्होंने अपने विचार, सिद्धांत और आदर्श के तहत उनसे कहा—“भाई साहब, जब आपके यहाँ रिश्ता पक्का हो गया तो अब लेन-देन का क्या महत्त्व? अब तो आपकी और मेरी इज़्ज़त एक है। मुझे कुछ नहीं चाहिए...आप जिस तरह से विवाह करना चाहते हों कर सकते हैं।”

“मेरी दो पुत्रियाँ और यही एकमात्र पुत्र है। लड़कियों के विवाह में मुझे दूसरे की इच्छा से बँधकर कार्य करना होगा। पर अपने बेटे की शादी मैं पूर्णरूप से अपनी इच्छानुसार करना चाहता हूँ...दान-दहेज और आडंबर रहित, सीधे-सादे ढंग से।” शिव प्रकाश ने अपनी इच्छा व्यक्त की।

उनकी लोभरहित सीधी-सादी बातें सुनकर शशिधर अचंभित हुए। विस्फारित नेत्रों से वह शिव प्रकाश को देखते रह गए। उनकी बात पर वह सहज विश्वास नहीं कर पा रहे थे। जिसका बेटा फ़रैस्ट ऑफ़िसर हो उसे तो चार-पाँच लाख मिलना साधारण सी बात है। क्षण भर में उन्होंने अपनी तुलना उनसे कर डाली...एक वह हैं जो अपने लड़के की शादी में विवाह के दिन तक के लेन-देन की फेहरिस्ट बना कर रखे हुए हैं। दूसरे सामने बैठे शिव प्रकाश हैं, कुछ माँग नहीं...कोई लालच नहीं। अपने बेटे को पढ़ा-लिखा कर अपने पैरों पर खड़ा करने में क्या उन्होंने अपनी गाढ़े की कमाई नहीं लगायी होगी? लेकिन उसे वापस पाने का लेशमात्र भी लोभ नहीं है। “लगता है आप कुछ सोचने लगे।” शिव प्रकाश की आवाज़ से शशिधर चौंक गए। अतः सँभलकर बोले—“आप ठीक कह रहे हैं। आप महान हैं जिसमें रंचमात्र भी लोभ नहीं है। अन्यथा आज कल तो...” उनकी बात बीच में ही रोककर शिव प्रकाश मुस्करा कर बोले—“रहने भी दीजिए...अधिक प्रशंसा ठीक नहीं है।”

शशिधर ने अत्यंत आदर के साथ उन्हें नमस्कार किया और चलने की इजाजत माँगी। शशिधर रातभर सो न सके। बार-बार उनका अंतर्मन उन्हें धिक्कार रहा था। एक वह हैं और एक शिव प्रकाश। दोनों में जमीन-आसमान का अंतर है। वह आरंभ से ही लोभ का दामन पकड़े हुए हैं...क्या शिव प्रकाश का हक नहीं बनता कि वह अपने बेटे के विवाह में मनचाही माँग करें? होता है...लेकिन वह अपने आदर्श एवं स्वच्छ विचार के कायल हैं। उनके जैसे नहीं कि मिथ्या की आड़ लेकर हकीकत पर परदा डालें और अपने को आदर्श एवं भला इन्सान दिखाने का नाटक करें।

शशिधर आत्मग्लानि से भर उठे। हम जैसों को शिव प्रकाश जैसे संप्रांत व्यक्ति से सबक लेना चाहिए। मेरी बेटी भाग्यशालिनी है जिसको ऐसे देवता स्वरूप इन्सान की पुत्रवधू बनने का सौभाग्य प्राप्त हो रहा है। पूरी रात शशिधर का मन-मस्तिष्क आत्मग्लानि एवं पश्चाताप के बोध से मथता रहा।

असह्य पीड़ा से मुक्ति हेतु प्रायश्चित्त स्वरूप उन्होंने सोचा, सुबह का भूला शाम को घर आ जाए तो वह भूला नहीं कहलाता। कल प्रातः होते ही उनका पहला काम होगा...श्रीकांत से साफ़-साफ़ कहना कि उन्हें कुछ नहीं चाहिए। अब तक की सारी बातें वह मज़ाक स्वरूप समझें। सोचते हुए उन्होंने हलके मन से सोने का प्रयास किया।



आर्य पब्लिशिंग हाउस

1569/30 नाईवाला, करोल बाग, नई दिल्ली-110005

दूरभाष : 011-28752604, 28752745 फ़ैक्स : 011-28756921

ISBN 81-7064-074-1



9 788170 640745



ISBN 81-7064-074-1

आर्य पब्लिशिंग हाउस

1569/30 नाईवाला, करोल बाग, नई दिल्ली-110005

दूरभाष : 011-28752604, 28752745 फ़ैक्स : 011-28756921



9 788170 640745